चक्रवर्ती- अरनाथ

सम्पादन एवं संकलन
ब्र. जयकुमार जैन ''निशान्त'' प्रतिष्ठाचार्य

:-प्रकाशक:-
श्री दिगम्बर जैन युवक संघ
श्री दिगम्बर जैन पंचवालयति मंदिर, विद्यासागर नगर, ए.बी.
रोड़, इन्दौर-१० म.प्र.

कृतिः-चक्रवर्ती- अरनाथ

सम्पादन एवं संकलनः-ब्र. जयकुमार जैन ''निशान्त''

प्रथम आवृत्ति :-1000 ,
उपलक्ष्यः- श्री अरनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक मानस्तंभ प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सवनवागढ़ (नंदपुर) ,ललितपुर उ.प्र.
29 जनवरी से 4 फरवरी 2016

प्रकाशक :- श्री दिगम्बर जैन युवक संघ इन्दौर

प्राप्ति स्थानः-

(१) श्री दिगम्बर जैन पंचवालयति मंदिर
विद्यासागर नगर, ए.बी.रोड़, इन्दौर-१० म.प्र.
0731-2571851, 4003506
मोबाईल - 089895 05108,

(२) ब्र. जयकुमार जैन ''निशान्त''प्रतिष्ठाचार्य
पं. मन्नूलाल जैन प्रतिष्ठाचार्य स्मृति ट्रस्ट
पुष्प भवन, पपौरा चौराहा टीकमगढ़, म.प्र
मोबाईल - 094251 41697

(३) श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नवागढ़ , नंदपुर
जिला- ललितपुर, उ.प्र.
मोबाईल - 97943 19739
अक्षर संयोजन :- ऋषभ जैन शास्त्री, शिखर जी

मुद्रकः- मोदी प्रिन्टर्स इन्दौर मप्र. 98260 16543

अनुक्रमणिका

१ प्रकाशकीय

२ प्राक्कथन

३ सम्पादकीय

४ चंदेल शासनकाल में जैन धर्म का विकास

५ नंदपुर वर्तमान नवागढ़ का उद्भव एवं विकास

६ नवागढ़ नंदपुर के प्रागेतिकहासिक साक्ष्य

७ अपूरणीय क्षति

८ सन्दर्भ

प्रकाशकीय

जो पुरूष वासनाओं, विकारों और कषायों आदि का दास न बनकर आत्मलंबी हो अपने रत्नत्रयधर्म को उज्जवल बनाते हुये आत्म विकास के क्षेत्र में बढ़ते हैं, वही महापुरूष कहलाते हैं। महापुरूष के लिये जितेन्द्रित्व अत्यंत आवश्यक गुण हैं। जिनागम में 169 महापुरूष कहे गये हैं। ये विशेष पुण्याधिकारी होते हुये अंत में मोक्ष पदवी को प्राप्त करते हैं। 14 कुलकर, 24 तीर्थंकर के माता एवं पिता, चौवीस तीर्थंकर,12 चक्रवती, 9 बलदेव,

9 वासुदेव, 9 प्रतिनारायण, 9 नारद, 11 रूद्र एवं 24 कामदेवों को महापुरूष कहा गया है। इनमें कुछ मोक्षगामी ,ऊर्ध्वगामी, और अधोगामी होते हैं।

इन 169 पुण्यपुरूषों में 24 तीर्थंकर 12 च्रक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव इस प्रकार श्रेष्ठ सत्पुरूषों को त्रेषठ शालाका पुरूष कहते हैं। तीर्थंकर मोक्षगामी होते हैं, चक्रवर्ती मोक्षगामी,ऊर्ध्वगामी तथा अधोगामी भी होते हैं, जो उनके कर्मों का प्रतिफल है। बलदेव ऊर्ध्वगामी होते हैं, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, नारद एवं रूद्र अधोगामी जीव होते हैं। सभी कामदेव मोक्षगामी होते हैं।

वर्तमान काल में हुये 24 तीर्थंकरों में शांतिनाथ,कुन्थुनाथ एंव अरनाथ तीर्थंकर के अलावा चक्रवर्ती और कामदेव भी हुये। स्वर्ग से आने वाले जीव ही चक्रवर्ती पद को प्राप्त करते हैं। नरक से आने वाले जीव चक्रवर्ती नहीं होते हैं। 32 हजार मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी चक्रवर्ती कहलाता है अर्थात् षट्खण्ड पृथ्वी का धारी चक्रवर्ती 14 रत्न, नव निधियों का धारी होता है। चक्रवर्ती अपार वैभवशाली होता है। जो तीर्थंकर तीन-तीन पद के धारी हुये उनके वैभव की गणना करना अकल्पनीय ही है।

ब्र. जिनेश मलैया

मनोभाव

जैन धर्म निवृत्तिमूलक धर्म है, सांसारिक व्यामोहों से स्वयं को परे करके उनके प्रति आसक्ति, मूर्छा को क्रमशः घटाते हुये अपने को स्वावलंवी बनाना ही उसका मूल उद्देश्य है । पुण्योदय से जीव को सभी प्रकार के भोगोपभोग के साधन सहज ही उपलब्ध होते जाते हैं, इनमें आसक्ति रखने वाला जीव इनको ही लक्ष्य मानकर उसमें रम जाता है। जिससे उसकी आरोहण यात्रा विराम को प्राप्त होती है।

इसके विपरीत जो जीव इसे क्षणभंगुर मानते हैं वह इनसे बचकर संयम, त्याग एवं तपस्या पूर्वक परम लक्ष्य को पाने का पुरुषार्थ करते हैं।

मानव पर्याय का अत्यंत पुण्यशाली जीव चक्रवर्ती पद को प्राप्त करके सर्वोत्कृष्ट सांसारिक सुखों को भोगकर उन्हें आत्म आरोहण में व्यवधान मानकर सहज ही छोड़ देते हैं। तपश्चरण करके सभी कर्मों की निर्जरा करके शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं। परन्तु कुछ जीव इस पुण्य को प्राप्त करके भी उस वैभव से स्वयं को निकाल नहीं पाते हैं और इसी से इनका अधःपतन होने के कारण पुनः संसार में संसरण करने लगते हैं।

कुछ जीव सर्वश्रेष्ठ पुण्य के धारक होते हैं जो तीर्थंकर प्रकृति का आस्त्रव, बंध करके तद्भव मोक्षगामी होते हैं। संपूर्ण वैभव को प्राप्त करके भी वह आत्मकल्याण के पथ पर निर्बाध चलते हैं। उनके संपर्क में आने वाले जीवों को भी कल्याण पथ का दिग्दर्शन मिलता है । वह गृहस्थ धर्म का पालन करते हुये, राज्य संचालन करते हुये भी कल्याण पथ से स्खलित नहीं होते हैं। क्षण मात्र संकेत पाते ही सबकुछ तृणवत छोड़कर दिगम्बर वेश धारण कर साधना में लीन हो जाते हैं। क्रमशः गुणस्थानों का आरोहण करके वह केवलज्ञान को प्राप्त कर भव्यजीवों को दिव्यध्वनि के माध्यम

से मोक्षमार्ग का निरूपण करते हैं। आयु के अंतिम क्षणों में योग-निरोध से देह से विदेह होकर चिरकाल के लिये सिद्धक्षेत्र में विराजमान हो जाते हैं, परन्तु कुछ जीव ऐसे विलक्षण पुण्य को धारण करते हैं जो तीर्थंकर सत्ता के साथ - साथ सर्वांग सुन्दर कामदेव तथा सर्वोत्कृष्ट पुण्शाली चक्रवर्ती पद को प्राप्त करता है। ऐसा जीव सांसारिक सुखों के चरमोत्कर्ष का भोगोपभोग करके चक्ररत्न आदि चौदह रत्नों तथा कालनिधि आदि नौ निधियों का स्वामी होता है।

इन रत्नों तथा निधियों के एक एक हजार देव रक्षा करते हैं, दशांग भोगों को भोगने वाला जीव छः खण्डों पर विजय श्री प्राप्त कर जिनशासन की प्रभावना करते हुये अपने मानव जीवन के लक्ष्य से विचलित नहीं होते हैं। इस समस्त विभूति को नश्वर मानकर दिगम्बरी दीक्षा लेकर तपश्चरण से क्रमशः कर्मों को क्षय करते हुये गुणस्थान आरोहण करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

इस कृति की संयोजना में श्रमणाचार्य विमर्श सागर जी महाराज, मुनि श्री अभयसागर जी महाराज तथा आर्यिका विद्यांत श्री माता जी का पूर्णतः निर्देशन प्राप्त हुआ है, उनके श्री चरणों में कोटिशः नमन वन्दन। मनीषी विद्वान ब्र. विनोद भैया, पं. विनोद जी रजवास, पं.मनीष जी टीकमगढ़, ने संयोजन के समित्व को स्वीकार किया, इन सबके प्रति आभार, अक्षर संयोजन हेतु श्री ऋषभ कुमार शास्त्री शिखर जी तथा प्रकाशक श्री दि. जैन युवक संघ के प्रति हार्दिक आभार।

ब्र. जयकुमार जैन "निशांत"
पुष्पभवन टीकमगढ़

त्रिकालवर्ती महापुरुष

जैन धर्मानुसार यह संसार अनादिनिधन है, तीनों लोकों की संरचना शाश्वत है। इसके ढाई द्वीप में पंचमेरु संबंधी विदेह क्षेत्र, भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में निरंतर तीर्थंकर भगवंतों का सद्भाव होता रहता है। इनमें विदेह क्षेत्र के आर्यखंडों में हमेशा चौथा काल रहता है अर्थात् वहां काल परिवर्तन नहीं होता है। भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों के छः खंडों में केवल आर्यखंड में ही काल परिवर्तन होता है।

भरत-ऐरावत क्षेत्र में 20 कोड़ा-कोड़ी सागर का एक काल चक्र होता है, जिसमें 10 सागर का अवसर्पिणी काल एवं १० सागर का उत्सर्पिणी काल होता है। यह काल परिवर्तन निम्नानुसार होता है। सुखमा-सुखमा, सुखमा, सुखमा-दुखमा, दुखमा-सुखमा,दुखमा एवं दुखमा-दुखमा।

इनमें प्रथम में उत्कृष्ट भोग-भूमि, द्वितीय में मध्यम भोगभूमि एवं तृतीय में जघन्य भोगभूमि अर्थात् भोगों की प्रचुरता के काल होते हैं। इनमें प्राणी 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त भोगोपभोग की सामग्री को जीवनभर भोगते हैं। इन्हें भूख-प्यास, शीत,ग्रीष्म,वर्षा, आंधी, तूफान, रोग, भय, शोक आदि असाता नहीं होती लेकिन इनमें संयम,त्याग और तपस्या भी नहीं होती है।

चौथा दुखमा-सुखमा काल कर्मभूमि काल कहा जाता है। इस काल के आरंभ में ही कल्पवृक्षों की शक्ति क्षीण होने लगती है, उनसें भोगोपभोग की सामग्री मिलना कम होने लगती है, प्राणियों को भूख, प्यास, की वेदना सताने लगती है, आंधी - तूफान एवं मौसम का प्रभाव पीड़ित करने लगता है , ऐसी विषम परिस्थितियों में कुलकर, तीर्थंकर, कामदेव, चक्रवर्ती, नारायण आदि का सद्भाव होने लगता है। इन्हें पुण्य पुरुष कहा जाता है। **इनकी संख्या 169 होती है जो निम्नानुसार हैं ।**

कुलकर(मनु)	- 14
तीर्थंकरों के माता	- 24
तीर्थंकरों के पिता	- 24
तीर्थंकर	- 24
चक्रवर्ती	- 12
बलदेव	- 9
वासुदेव(नारायण)	- 9
प्रतिवासुदेव(प्रतिनारायण)	- 9
नारद	- 9
रुद्र	- 11
कामदेव	- 24

कुलकरः- भोग भूमि के अंत में तथा कर्म भूमि के प्रारंभ में विशेष परिवर्तन देखकर चकित और चिंतित मानव समाज को निराकुल करके प्रशस्त मार्ग प्रदर्शन करने वाले ये चौदह महापुरुष होते हैं, इन्हें कुलकर कहते हैं । ये सब कुलकर अपने पूर्वभव में उच्च कुल वाले महापुरुष थे । उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण करने के पूर्व में पुण्य पात्र दान आदि उज्ज्वल कार्यों के द्वारा भोग भूमि की आयु बांध ली थी। पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के समीप उन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया और विशेष श्रुतज्ञान की प्राप्ति की तथा आयु के अन्त होने पर मरण कर इस भरत क्षेत्र में कुलकर के रूप में जन्म लिया।

जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

1- प्रतिश्रुति	2- सन्मति	3- क्षेमन्कर
4- क्षेमन्धर	5 -सीमंकर	6-सीमन्धर
7-विमलवाहन	8 चक्षुष्मान	9-यशस्वी

10-अभिचन्द्र	11-चन्द्राभ	12-मरुदेव
13-प्रसेनजित	14-नाभिराज	

भगवान की मातायेंः-

1 मरूदेवी	2 विजयादेवी	3 सुषेणादेवी	4 सिद्धार्था
5 सुमंगला	6 सुसीमा	7 पृथ्वी	8 लक्ष्मणा
9 जयरामा	10 सुनंदादेवी	11 विष्णुश्री	12 जयावती
13 आर्यसामा	14 लक्ष्मीमति	15 सुप्रभा	16 ऐरादेवी
17 श्रीदेवी	18 मित्रसेना	19 प्रभावती	20 सोमा
21 वर्मिला	22 शिवादेवी	23 वामादेवी	24 त्रिशलादेवी

भगवान के पिताः-

1 नाभिराय	2 जितशत्रु	3 दृढ़राज	4 संबर
5 मेघरथ	6 धरणराजा	7 सुप्रतिष्ठ	8 महासेन
9 सुग्रीवराजा	10 दृढ़रथराजा	11 विष्णुराज	12 वसुपूज्य
13 कृतवर्मा	14 सिंहसेन	15 भानुराज	16 विश्वसेन
17 सुरसेन	18 सुदर्शन	19 कुम्भराज	20 समित्र
21 विजयराज	22 समुदविजय	23 विश्वसेन	24 सिद्धार्थ

तीर्थंकरः- इस तीर्थंकर शब्द में आगत तीर्थ शब्द के स्वरूप पर विचार करना उचित है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने लिखा है 'तीर्थमागमः तदाधारसंघश्च'' अर्थात् जिनेन्द्र कथित आगम तथा आगम का आधार साधुवर्ग तीर्थ हैं। तीर्थ शब्द का अर्थ घाट भी होता है अतएव **तीर्थकरोतीति तीर्थंकरः** का भाव यह होगा कि जिनकी वाणी के द्वारा संसार सिंधु से जीव तिर जाते हैं वे तीर्थ के कर्ता तीर्थंकर कहे जाते हैं सरोवर में घाट बने रहते हैं, उस घाट से मनुष्य सरोवर के बाहर सरलतापूर्वक आ जाता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् के पथ-प्रदर्शन का अवलम्बन लेने वाला जीव संसार सिंधु में न डूब कर भव समुद्र से पार उतर जाता है।

चौबीस तीर्थंकरों के नामः-

1	ऋषभनाथ	2	अजितनाथ
3	संभवनाथ	4	अभिनन्दन
5	सुमतिनाथ	6	पद्मप्रभ
7	सुपार्श्वनाथ	8	चन्द्रप्रभ
9	पुष्पदन्त	10	शीतलनाथ
11	श्रेयांसनाथ	12	वासपूज्य
13	विमलनाथ	14	अनन्तनाथ
15	धर्मनाथ	16	शान्तिनाथ
17	कुन्थुनाथ	18	अरनाथ
19	मल्लिनाथ	20	मुनिसुव्रतनाथ
21	नमिनाथ	22	नेमिनाथ
23	पार्श्वनाथ	24	महावीर

9 बलभद्रों के नाम इस प्रकार हैं-

1 विजय, 2 अचल, 3 सुधर्म, 4 सुप्रभ, 5 सुदर्शन,
6 नन्दी, 7 नन्दीमित्र, 8 रामचन्द्र, 9 बलिराम

9 नारायणों के नाम इस प्रकार हैं-

1 त्रिपिष्ट 2 द्विपिष्ट 3 स्वयंभू 4 पुरूषोत्तम
5 पुरूषसिंह 6 पुंडरीक 7 दत्त 8 लक्ष्मण
9 कृष्ण

9 प्रतिनारायणों के नाम इस प्रकार हैं-

1 अश्वग्रीव 2 तारक 3 मेरक 4 निशंभु
5 मधुकैटभ 6 प्रल्हाद 7 बलि 8 रावण
9 जरासंध

9 नारद के नाम इस प्रकार हैं-

1 भीम 2 महाभीम 3 रौद्र 4 महारूद्र
5 काल 6 महाकाल 7 दुर्मुख 8 नरमुख
9 अधोमुख

ग्यारह रूद्रों के नाम इस प्रकार हैं-

1 भीम 2 बलि 3 शंभू 4 विश्वानल
5 सुप्रतिष्ठत 6 अचल 7 पुंडरीक 8 अजितंधर
9 जितनाभि 10 पीठ 11 महादेव

२४ कामदेवों के नाम इस प्रकार हैं-

1 बाहूबली 2 प्रजापति 3 श्रीधर 4 दर्शनभद्र
5 प्रसेन चन्द्र 6 चन्द्रवर्ण 7 अग्निमुख 8 सनत्कुमार
9 वत्सराज 10 कनक प्रभ 11 मेघप्रभ 12 शान्तिनाथ
13 कुन्थुनाथ 14 अरनाथ 15 विजयराज 16 श्रीचन्द
17 नलराज 18 हनुमंत 19 बलिराज 20 वसुदेव
21 प्रदुम्न 22 नागकुमार 23 जीवंधर 24 जम्बूस्वामी

:- चक्रवर्ती वैभवः-

चक्रवर्तीः-पूर्व में की गई विशेष तपस्या के प्रभाव से चौदह रत्न और नव निधियाँ चक्रवर्ती को प्राप्त होती हैं। सजीव रत्न चक्रवर्ती के अधीन ही कार्य करते हैं। कुछ अजीव रत्नों का संचालन सेनापति आदि अन्य किया करते हैं। किन्तु चक्ररत्न का संचालन चक्रवर्ती ही करता है जब चक्रवर्ती चलता है तब चक्ररत्न सबसे आगे चलता है। चक्रवर्ती की पहचान चक्ररत्न से ही होती है। अतः उसे चक्रवर्ती कहते हैं।

चक्रवती का वैभव :- तीर्थंकर प्रभु को छोड़कर सभी मनुष्यों में चक्रवर्ती का पुण्य, बल, शारीरिक क्षमता एवं अन्य सभी प्रकार के साधन सर्वोत्कृष्ट होते हैं उसके पुण्य प्रभाव से उसकी आयुधशाला में

सर्वप्रथम चक्ररत्न उत्पन्न होता है, उसके पश्चात् शेष रत्न एवं नवविधियों की उत्पत्ति होती है । इन रत्नों एवं निधियों के साथ एक-एक हजार यक्ष अधिष्ठायक रूप से विद्यमान रहते हैं, जो सदैव चक्रवर्ती की सेवा में तत्पर रहते हैं, इन्हीं के सद्भाव में चक्रवर्ती छःखण्ड के दिग्विजयकाल में छोटे बड़े राजा चक्रवर्ती की आज्ञा स्वीकार कर उन्हें अपनी कन्यायें समर्पित करने का गौरव प्राप्त करते थे ।

सभी चक्रवर्ती वज्रवृषभसंहनन से सहित, सुवर्ण के समान वर्णवाले उत्तम शरीर धारक, सम्पूर्ण सुलक्षणों से युक्त और समचतुरस्र रूप शरीर संस्थान से संयुक्त होते हैं।

इनमें से प्रत्येक चक्रवर्ती के मन को हरण करने वाली और अभिनव लावण्यरूपरेखा से युक्त छियानवे हजार युवतियां होती हैं। इनमें से बत्तीस हजार आर्यखण्ड की राजकन्यायें, इतनी ही विद्याधर राजकन्यायें और इतनी ही म्लेच्छ राजकन्यायें होती हैं।

प्रत्येक चक्रवर्ती के पास एक एक युवतिरत्न होता है। उनके साथ वे संकल्पित सुख को भोगते हैं। चक्रवर्ती के संख्यात हजार पुत्र-पुत्रियां होती हैं और बत्तीस हजार गणबद्ध नामक देव उनके परिचारक होते हैं।

उनके तनुत्र और महनसिक अर्थात रसोईये क्रम से तीन सौ साठ, तथा चौदह उत्तम रत्न होते हैं। ये रत्न जीब और आजीव के भेद से दो प्रकार के हुआ करते हैं। पवनंजय (अश्व), विजयगिरि (गज), भद्रमुख (गृहपति), कामबृष्टि (स्थपति), अयोध्य (सेनापति), सुभद्रा (युवति) और बुद्धिसमुद्र (पुरोहित), ये प्रत्येक जीवरत्न हैं।

छत्र, असि, दण्ड, चक्र, काकिणी, चिन्तामणि, और चर्म ये सात रत्न निर्जीव होते हैं।

चक्रवर्ती के चामरों को बत्तीस यक्ष ढुराया करते हैं तथा प्रत्येक के बन्धुकुल का प्रमाण साढ़े तीन करोड़ होता है।

काल, महाकाल,,पाण्डु, मानव, शंख,पद्म ,नैसर्प, पिंगल और नानारत्न,

ये नौ निधियां श्रीपुर में उत्पन्न हुआ करती हैं।

कालनिधि को आदि लेकर नानारत्नपर्यंत वे निधियां नदीमुख में उत्पन्न होती हैं, इस प्रकार भी कितने ही पूर्वाचार्य निरूपण करते हैं। इन नौ निधियों में से प्रत्येक क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य, भोजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, हर्म्य, आभरण और रत्नसमूहों को दिया करती है।

चक्रवर्तियों के चौबीस दक्षिणमुखावर्त धवल व उत्तम शंख, एक कोड़ाकोड़ी हल और छह खण्डरूप पृथ्वी होती है ।

चक्रवर्ती के रमणीय भेरी और पटह पृथक पृथक बारह होते हैं, जिनका उत्तम शब्द बारह योजन प्रमाण सुना जाता है।

उनकी गायों की संख्या तीन करोड़, एक करोड़ थालियां तथा भद्र हाथी एवं रथ प्रत्येक चौरासी लाख प्रमाण होते हैं।

इसके अतिरिक्त अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी करोड़ उत्तम वीर, अनेकों करोड़ विद्याधर और अठासी हजार म्लेच्छ राजा होते हैं।

चक्रवर्ती के पास बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, इतनी ही नाट्यशालायें और इतनी ही संगीतशालायें भी होती हैं। चक्रवर्ती के अधिकार में पदानीक (पदाति) दुगुणित चौबीस अर्थात् अड़तालीस करोड़ और देश बत्तीस हजार होते हैं। चक्रवर्ती के अधिकार में छियानवे करोड़ ग्राम, पचत्तर हजार नगर और सोलह हजार खेट होते हैं।

किंमिच्छिक दानः- औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान ये चार दान गृहस्थ श्रावकों के द्वारा मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका आदि को धार्मिक भावना से दिये जाते हैं। किमिच्छिक दान चक्रवर्ती के द्वारा राज्य में अभावग्रस्त ग्रहस्थों को दिया जाता है जिससे वे अपना जीवन सुख से व्यतीत करते हुये धर्माराधना करते हैं। याचकों को उनकी इच्छानुरूप उपयोगी वस्तुओं को इतना दिया जाता है जिससे उनकी इच्छा शेष न रहे, वह किमिच्छिक दान कहलाता है। इस प्रकार के दान देने की योग्यता चक्रवर्ती में ही होती है।

चक्रवर्ती की राजविद्या -

1. आन्वीक्षिकी - सांच, झूठ एवं अपना बल रूप जान लेना ।

2. त्रयी - अधर्म एवं धर्म का विषेश ज्ञान ।

3. वार्ता - अर्थ ,अनर्थ समझना ।

4. दण्डनीति- दुष्टों की दण्ड विधि ।

चौदहरत्न - चक्रवर्ती के पुण्य प्रभाव से चक्ररत्न के साथ १४ रत्नों की उत्पत्ति होती है । इनके उत्पत्ति स्थान निम्न हैं ।

सेनापति, गृहपति, स्थपति, पुरोधा (पुरोहित) गज, घोड़ा और युवती ये रत्न विजयार्द्ध पर्वत पर, काकणीरत्न, चूड़ामणिरत्न और धर्मरत्न ये तीन रत्न श्री गृह में तथा असि,दंड, छत्र और चक्ररत्न ये चार रत्न आयुध शाला में उत्पन्न होते हैं ।

चौदहरत्नों के नाम एवं कार्यों का वर्णन -

१.सेनापति - सेनाध्यक्ष-अयोध्य- 06 खंडों के सभी देश, प्रदेश को जीतने में सेना का संचालन तथा गुफाओं के द्वार खोजने का महत्वपूर्ण कार्य करना ।

दण्डरत्न को आगे कर सेनापति सबसे आगे ऊँचे-नीचे वनस्थलों को लीलापूर्वक एकसा करता जाता था। जिससे राजमार्ग जैसा रास्ता बन जाता था, जिस पर सेना निर्बाध आगे बढ़ती जाती हैं ।

2. गृहपति- भण्डारी-भद्रमुख-भण्डार की सम्हाल करना ।

3. स्थापित(सिलावट) बढ़ई- तक्षक-कामवृष्टि-उन्मग्ना एवं निमग्ना नदियों पर पुल बनाना । अनेक प्रकार के कपड़े के तंबू घास की बड़ी-बड़ी झोपड़ियों और आकाश में चलने वाले रथ बनाना ।

4. पुरोधा/पुरोहित- धर्मप्रेरक-बुद्धि समुद्र-धार्मिक अनुष्ठान कराना, विशेष परिस्थितियों में सलाह देना ।

5 गज - हाथी-विजयगिरि-सवारी करना ।

6 घोड़ा - अश्व -पवनंजय/ कुमुरामेलक गुफाद्वार खुलने पर

12 योजन क्षेत्र को एक छलांग में लांघने वाला ।

7- युवती/स्त्री पटरानी-सुभद्रा-उपयोग का साधन ।

8. काकणी - अस्त्र-चिंताजननी-गुफाओं में प्रकाश करना, काकणी और चूड़ामणि रत्न से गुफाओं की दीवार पर हर-एक योजन की दूरी पर सूर्य चन्द्रमा के मंडल लिखना जिनसे सूर्य एवं चंद्रमा जैसा प्रकाश मिलता है ।वृषभांचल पर्वत पर प्रशस्ति लिखना ।

9 . चूड़ामणि- रत्न- चूड़ामणि । चिंतामणि- मनोवांछित कार्य सिद्ध करना, गुफा में प्रकाश करना ।

10-चर्मरत्न-तम्बू-मज्झमय- जल से कटक की रक्षा करना । नागमुख देव द्वारा की गई जलवृष्टि से चारों और समुद्र सा जल भर गया था तब नीचे धर्मरत्न एवं ऊपर से छत्ररत्न ने मिलकर अंडाकार आकार बनाया, जिसमें पूरी सेना सुरक्षित हो गयी । जिसमें चक्ररत्न द्वारा प्रकाश किया जा रहा था ।

11. असिरत्न/खड़ग-आयुध-भूतमुख (भद्रमुख)-शत्रु का संहार करने में ।

12 . दण्डरत्न-अस्त्र-प्रचण्डवेग- गुफाओं के कपाट खोलना ,वृषभांचल पर्वत पर प्रशस्ति लिखना । शत्रुओं को दंडित करने वाला तथा सेना में आगे चलते हुए मार्ग को साफ एवं निरापद करना ।

इस रत्न का प्रमाण एक धनुष प्रमाण होता है, रास्ते की ऊँची नीची पृथ्वी को यदि एक हजार योजन प्रमाण चीरना पड़े तो भी यह समर्थ होता है।

13छत्र रत्न -छतरी-सूर्यप्रभ-वर्षा से कटक की रक्षा करना ।

14चक्ररत्न- आयुध-सुदर्शन-छःखण्ड विजय का प्रेरक साधन । सेना के आगे-आगे चलकर मार्ग को व्यवस्थित करना । धर्मरत्न एवं छत्ररत्न के बीच स्थित सेना के समय प्रकाश उत्पन्न कर उनके भय को दूर करना ।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में इन रत्नों के बारे में निम्न उल्लेख मिलता है । पुरोहित रत्न रणसंग्राम आदि प्रसंगों में सैनिकों आदि के शरीर में लगे घाव को मल्हम पट्टी दवा भोजन द्वारा मिटाने के कार्य में यथा दूसरे छोटे रोगों में चिकित्सा द्वारा मदद करना ।

काकणी रत्न का प्रमाण 04 अंगुल होता है ।

चूड़ामणि/मणिरत्न चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ाई प्रमाण होता है । इसका ऐसा अनूठा प्रभाव होता है कि हाथ में बांधा जाये या सिर पर धारण किया जाये तो सभी प्रकार के रोगों का नाश करता है । इस रत्न का प्रकाश 12 योजन तक फैलता है।

छत्र रत्न का प्रमाण एक धनुष होता है, चक्रवर्ती चाहे तो इसे छूकर बारह योजन प्रमाण विस्तार में छाया कर सकता हैं । सामान्य रूप से यह चर्म रत्न दो हाथ प्रमाण होता है परन्तु विशेष प्रसंगवश चक्रवर्ती का हाथ लगते ही यह बारह योजन प्रमाण तक विस्तार पा जाता है । इसमें प्रातः काल बोया हुआ अनाज धान्य फलादि सांयकाल तक पककर तैयार हो जाते हैं ।

नव निधियाँ – चक्रवर्ती के पुण्य प्रभाव से उनके श्रीपुर में भोगोपभोग की सामग्री देने वाली काल,महाकाल, पाण्डु, मानव, शंख, पद्म, नैसर्प पिंगल और नानारत्न नवनिधियाँ उत्पन्न होती है। प्रकारान्तर से उनकी उत्पत्ति स्थान नदीमुख भी कहा गया है । यह निधियाँ अविनाशी थी । निधिपाल नामक देवों के द्वारा सुरक्षित थी और निरंतर लोगों के उपकार में आती थी । यह कामवृष्टि नामक गृहपति के आधीन थी और चक्रवर्ती के समस्त मनोरथों को पूर्ण करती थी । यह गाड़ी के आकार की थी । चार-चार भौंरों और आठ-आठ पट्टियों से सहित नौ योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी आठ योजन गहरी और वक्षारगिरि के समान विशाल कुक्षी से सहित थीं ।

1 कालनिधि -इससे ज्योतिष शास्त्र, निमित्त शास्त्र, न्यायशास्त्र,

कला शास्त्र, व्याकरण शास्त्र एवं पुराण आदि का सद्भाव अर्थात् प्राप्ति होती थी ।

इससे तर्क, व्याकरण, छंद अलंकार, लोक व्यवहार, व्यापार संबन्धी शास्त्र, वीणा, बांसुरी, पटह वाद्य प्राप्त होते है । इससे ऋतु के अनुसार द्रव्य फल,फूल आदि प्राप्त होते थे ।

2- महाकाल निधि – इससे विद्वानों के द्वारा निर्णय करने योग्य पंच लोहे आदि नाना प्रकार के लोहों का सद्भाव था ।

इससे असि.मसि. षट्कर्मों के साधन एवं अन्य सम्पदा प्राप्त होती थी। इससे भाजन अर्थात् वर्तन एवं धातुऐं प्राप्त होते थी।

3- पाण्डु/पाण्डुक निधि - इससे शालि, ब्रीहि, जौ आदि समस्त प्रकार की धान्य तथा कडुए , चिरपरे आदि पदार्थो का सद्भाव था । इससे धान्य एवं मनोहर रस । षट् रस की प्राप्ति होती थी ।

4. मानव/माणवक निधि - यह कवच, ढाल, तलवार, बाण शक्ति, धनुष तथा चक्र आदि नाना प्रकार के दिव्य शास्त्रों से परिपूर्ण थी । यह आयुध एवं नीति शास्त्र प्रदान करती थी।

5 .नैसर्पनिधि - शैय्या, आसन आदि नाना प्रकार की वस्तुओं तथा घर में उपयोग आने वाले नाना प्रकार के भाजनों की पात्र थी । इससे आसन शैय्या एवं प्रसाद प्राप्त होते थे ।

6. शंख निधि – भेरी, शंख, नगाड़े , वीणा, झल्लरी, और मृदंग आदि आघात से तथा फूंककर बजाने योग्य नाना प्रकार के बाजों से पूर्ण थी । शंख निधि से स्वर्ण की प्राप्ति होती थी ।

7. पद्मनिधि – पादाम्बर , चीन , महानेत्र , दुकूल , उत्तम कम्बल तथा नानाप्रकार के रंग बिरंगे-वस्त्रों से परिपूर्ण थी।

8. पिंगल निधि – कड़े तथा कटिसूत्र आदि स्त्री पुरुषों के आभूषण और हाथी ,कघोड़ा आदि के अलंकारों से परिपूर्ण थी।

9. नानारत्न/सर्वरत्न निधि-इन्द्रनीलमणि, महानीलमणि, बज्रमणि

आदिबड़ी-बड़ी शिखा के धारक उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण थी।

चक्रवर्ती का राजवैभव-चक्रवर्ती चौदह रत्नों एवं नवनिधियों के साथ 32 हजार मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी होता है। यह राजा राज्य व्यवस्था एवं सैन्य व्यवस्था में महारथी होते थे।

राजाओं के कर्तव्य :-

1. आत्मपालन - अपनी रक्षा की व्यवस्था करना।
2. मतिपालन - अपनी बुद्धि एवं विवेक जाग्रत रखना।
3. कुलपालन - राजकुलाचार पर ध्यान रखना।
4. प्रजापालन - पुत्रवत् प्रजा का पालन करना।

राजाओं के छः विशेष गुण -

1. संधि - अन्य राजाओं से प्रेम व्यवहार बनाकर रखना।
2. निग्रह - अन्याय रोकने के लिए युद्ध करना।
3. यान - विविध प्रकार के वाहनों का साधन एवं ज्ञान।
4. आसन - राज्य व्यवस्थानुसार-स्थान।
5. संस्थान - बचन की दृढ़ता।
6. आश्रय - अपने से बलिष्ठ का सहारा लेना और अपने से कमजोर को सहारा देना।

राजाओं का स्वामित्व -

1. सेनापति - समस्त सेनाओं का नायक
2. गणकपति - ज्योतिष आदि का नायक
3. वणिकपति - व्यापारियों का नायक
4. मंत्री - पंचाग मंत्र विषय में प्रवीण
5. दण्डपति- सेना नायक
6. महत्तर - कुलवान अर्थात् कुल विशेष में उच्चता।
7. तलवर - नगर कोतवाल।
8. वर्ण स्वामी ब्राह्मण

9. क्षत्री - शरणागत की रक्षा करना।
10. वैश्य - व्यापार कार्य करने वाले।
11. शूद्र - सेवा कार्य करने वाले।
12. हाथी - युद्ध में विजयश्री दिलाने वाले।
13. घोड़ा - सैनिकों सवारी हेतु।
14. रथ - आवागमन करने हेतु।
15. पदाति चतुरंग सेना स्वामी -
16. पुरोहित (राजपंडित) -
17. अमात्य (देश का अधिकारी) -
18. महामात्य (राज्यकार्यों का अधिकारी) -

उपरोक्त गुणों से मुक्त 18 प्रकार श्रेणी का स्वामी एक मुकुट बद्ध राजा होता है।

500 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अधिराजा होता है।

1000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महाराजा होता है।

2000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अर्धमंडलीक होता है।

4000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी मांडलीक होता है।

8000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महामांडलीक होता है।

16000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अर्धचक्री (त्रिखंडाधिपति) होता है।

32000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी चक्रवर्ती (षट्खंडाधिपति) होता है।

चक्रवर्ती की सेना के भेद व प्रमाण -

1. **पत्ति -** 1 रथ, 1 हाथी, 5 प्यादे, 3 घोड़े होते हैं।
2. **सेना** -3 रथ, 3 हाथी, 15 प्यादे, 9 घोड़े होते हैं।
3. **सेनामुख** -9 रथ, 9 राशी, 45 प्यादे, 27 घोड़े होते हैं।
4. **गुल्म** -27 रथ, 27 राशी, 135 प्यादे, 81 घोड़े होते हैं।

5. वाहिनी -81 रथ 81 हाथी 405 प्यादे, 243 घोड़े होते हैं।

6. प्रतना- 243 रथ 243 हाथी, 1215 प्यादे, 729 घोड़े होते हैं

7. चमू -729 रथ 729 हाथी, 3645 प्यादे, 2187 घोड़े होते हैं

8. अनीकिनी - 2187 रथ 2187 हाथी 10935 प्यादे, 6561 घोड़े होते हैं ।

9. अक्षोहिणी सेना :- इसमें 10 अनीकिनी होती हैं। 21870 रथ 21870 हाथी 109350 प्यादे 65610 घोड़े होते हैं ।

चक्रवर्ती की सेना में रथ, हाथी, प्यादे एवं घोड़े के साथ देव एवं विद्याधर भी होते हैं । इसे षट्प्रकार सेना कहा जाता है जो पृथ्वी एवं आकाश के अंतराल में व्याप्त अर्थात् फैली रहती हैं ।

व्यूह रचना - उक्त सेना में ०4 प्रकार के व्यूह होते हैं ।

(1) दण्ड ब्यूह (2) मंडल ब्यूह (3) भोग ब्यूह

(4) असंहत ब्यूह ।

पद्यानन्दकाव्य में भी चक्रवर्ती को बहत्तर कलाओं की शिक्षा प्राप्त होने का निर्देश है । ये कलाऐं निम्न प्रकार है -

1. **लेख**-सुन्दर और स्पष्ट लिपि लिखना तथा स्पष्ट रूप से अपने भाव और विचारों को अभिव्यजंना लेखन द्वारा करना ।

2. **गणित**- अंकगणित, बीजगणित ओर रेखागणित का ज्ञान।

3. **रूप**- चित्रकला का ज्ञान-इस कला में धूलिचित्र, दृश्यचित्र और उस चित्र से तीन प्रकार के चित्र आते हैं ।

4. **नाट्य-** नाटक लिखने और खेलने की कला । इस कला में सुरताल आदि की गति के अनुसार अनेक चित्र नृत्य के प्रकार सिखलाये जाते हैं ।

5. **गीत**- किस समय कौन सा स्वर अलापना चाहिए, अमुख स्वर को अमुक समय पर अलापने से क्या प्रभाव पड़ता है ? इन समस्त विषयों की जानकारी परिगणित ही है ।

6. **वादित**- संगीत के स्वरभेद और ताल आदि के अनुसार वाद्यकला का परिज्ञान ।

7. **पुष्करगत**-बांसुरी और भेरी आदि के वाहन की कला ।

8. **स्वरगत-** पड्उज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवन और निशाद का परिज्ञान ।

9. **समताल-** वाद्यों के अनुसार हाथ या पैरों की गति की साधना ।

10. द्यूत- जुवा खेलने की कला । प्राचीनकला में । जुआ को मनोविनोद का साधन माना गया है, अतः इसकी गणना कलाओं में होती है।

11. जनवाद- मनुष्य के शरीर, रहन-सहन बात-चीत, खान-पान आदि के द्वारा उसका परीक्षण करना कि यह किस प्रकृति का है और किस पद या किस कार्य के लिए उपयुक्त है।

12. प्रोक्षत्व- बाद्य विशेष की कला ।

13. अर्थपद- अर्थशास्त्र की जानकारी । इसके अन्तर्गत रत्नपरीक्षा और धातुवाद ये दोनों ही सम्मिलित है ।

14. जलमृत्तिका- जलवाली मिट्टी का परीक्षण किस स्थान में जल है या किस स्थान में नहीं, यह मिट्टी के परीक्षण से अवगत कर लेना ।

15. अन्ननिधि- भोजन निर्माण करने की कला, विविध प्रकार के खाद्यों को तैयार करना, इस कला का उद्देश्य है।

16. पानविधि- शरबत, चाय, पानक आदि विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ तैयार करने की कला ।

17. वस्त्रविधि- वस्त्र निर्माण की कला ।

18. शयनविधि- शय्या निर्माण तथा शयन संबंधी अन्य आवश्यक बातों की जानकारी ।

19. आर्या-आर्या छन्द के विविध रूपों की जानकारी ।

20. प्रहेलिका- पहेली बूझने की योग्यता ।

21. **मागधिका**- मागधी भाषा और साहित्य की जानकारी ।

22. **गाथा**- गाथा लिखना और समझना ।

23. **श्लोक**- श्लोक रचना करना और समझना ।

24. **गन्धमुक्ति**- इत्र, केसर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों की पहचान और उनके गुणदोषों का परिज्ञान ।

25. **मधुसिक्थ**-मौन या आलता बनाने की विधि की जानकारी।

26. **आभरणविधि**- आभूषण निर्माण और धारण करने की कला।

27. **तरुणपरिकर्म**-अन्य व्यक्तियों को प्रसन्न करने की कला।

28. **स्त्रीलक्षण**-नारियों की जाति और उनके गुण अबगुणों की पहचान ।

29. **पुरुषलक्षण**- पुरुषों की जाति और उनके गुणों अवगुणों की पहचान ।

30. **हयलक्षण**-घोड़ों की परीक्षा तथा उनके शुभा-शुभ लक्षणों का परिज्ञान ।

31. **गजलक्षण**-हाथियों की जातियों तथा उनके शुभाशुभ की जानकारी ।

32. **गोलक्षण**- गायों की जानकारी ।

33. **कुर्कूटलक्षण**- मुर्गों की पहचान और उनके शुभाशुभ लक्षणों का परिज्ञान ।

34. **मेढ़लक्षण**-मेढ़े की पहचान और शुभाशुभ लक्षणों का परिज्ञान ।

35. **चक्रलक्षण**-चक्र परीक्षा और चक्र संबंधी शुभाशुभ ज्ञान ।

36. **छत्रलक्षण**-छत्र परीक्षा और छत्र संबंधी शुभाशुभ ज्ञान ।

37. **दण्डलक्षण**-दण्ड परीक्षा और दण्ड संबंधी शुभाशुभ ज्ञान।

38. **असिलक्षण**-असि परीक्षा और असि संबंधी शुभाशुभ ज्ञान।

39. **मणिलक्षण**-मणि, हीरा, रत्न, मुक्ता आदि की परीक्षा ।

40. **काकिणी लक्षण**- सिक्कों की जानकारी ।

41. **चर्मलक्षण**- चर्म की परीक्षा करने की जानकारी ।

42. **चन्द्रचरित**-चन्द्रमा की गति, विमान एवं अन्य तद्विषयक जानकारी ।

43. **सूर्यचरित**-सूर्य की गति, विमान एवं अन्य तद्विषयक जानकारी ।

44. **राहुचरित**- राहु ग्रह संबंधी जानकारी ।

45. **ग्रहचरित**- अन्य समस्त ग्रहों की गति, आदि का ज्ञान ।

46. **सौभाग्यकर**- सौभाग्य सूचक लक्षणों की जानकारी ।

47. **दौभाग्यकर**- दुर्भाग्य सूचक चिन्हों की जानकारी ।

48. **विद्यागत**- शास्त्रज्ञान प्राप्त करना ।

49. **मंत्रगत**- दैहिक, दैविक और भौतिक पदार्थों को दूर करने के लिए मंत्रविधि का परिज्ञान ।

50. **रहस्यगत**- जादू, टोने और टोटके का परिज्ञान ।

51. **संभव**-प्रसूति विज्ञान ।

52. **चार**-तेज गमन करने की कला ।

53. **प्रतिचार**- रोगी की सेवा सुश्रुता करने की कला ।

54. **ब्यूह**-ब्यूह रचना की कला । युद्ध करते समय सेना की कई भागों में विभक्त कर दुर्लंड्घ्य भाग में स्थापित करने की कला ।

55. **प्रतिब्यूह**-शत्रु के द्वारा ब्यूह रचना करने पर उसके प्रत्युत्तर में प्रतिब्यूह रचने की कला ।

56. **स्कन्धवार निवेशन**- छावनियाँ बसने की कला, सेना की रसद आदि भेजने का प्रबंध कहाँ और कैसे करना चाहिए, आदि का परिज्ञान ।

57. **नगरनिवेशन**-नगर बसाने की कला ।

58. **स्कन्धवारमान**- छाबनियाँ बसने की कला, सेना की रसद आदि भेजने का प्रबंध कहाँ और कैसे करना चाहिए, आदि का परिज्ञान ।

59. **नगरमान**- नगर का प्रमाण जानने की कला ।

60. **वास्तुमान**- भवन प्रसाद और गृह के प्रमाण जानने की कला ।

61. वास्तुनिवेशन- भवन, प्रसाद और गृह बनाने की कला ।

62. इष्वस्त्र- बाण प्रयोग करने की कला ।

63. त्सरूप्रवाद- असिशास्त्र का परिज्ञान ।

64. अश्वशिक्षा- अश्व को शिक्षा देने की कला-नानाप्रकार की चालें सिखलाना ।

65. हस्तिशिक्षा- हाथी को शिक्षित करने की कला ।

66. धनुर्वेद- धनुर्विधा की जानकारी ।

67. हिरण्यबाद (हिरण्यपाक) - चाँदी के विविध प्रयोग और उनके रूपों को जानने की कला ।

सुवर्णवाक (सुवर्णपाक) - सोने के विविध प्रयोग और उसको जानने की कला ।

मणिवाद (मणिपाक) - मणि संबंधी विविध प्रयोगों की जानकारी एवं चातुष्पाद का ज्ञान।

68. बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, अस्थियुद्ध एवं युद्धातियुद्ध की कला ।

69.सूत्रखेल, नासिकाखेल, मृतखेल, धर्मखेल एवं चर्मखेल आदि का कलात्मक परिज्ञान ।

70. पत्रच्छेद, कटकच्छेद एवं प्रतरच्छेद की कला ।

71. संजीव और निर्जीव- मृत या मृततुल्य व्यक्ति को जीवित करने की कला तथा यंत्र आदि के द्वारा मरणकला का ज्ञान ।

72. शकुनरूत- पक्षियों की आवाज द्वारा शुभाशुभ का परिज्ञान।

अठारह प्रकार की लिपियों की शिक्षा भी दी जाती थी । इन लिपियों के नाम निम्न प्रकार है :-

1. ब्राहमी,	2. यवनालिका	3. दोषोरिका,
4. खरोष्ट्रिका,	5. खरषाविका,	6. प्रहरात्रिता,

7. उच्चतरिका,	8. अक्षरपृष्टिका,	9.भोगवतिका,
10. वेनतिका	11. निन्हविका	12.अंकलिपि,
13. गणितलिपि,	14.गार्न्धवलिपि,	15. अदर्शलिपि,
16. माहेश्वरीलिपि,	17. दामिलिपि और	18. बोलिन्दिलिपि

ग्रामः- जिनमें बाड़ से घिरे हुये गृह हों, किसानों और शिल्पियों का निवास हो तथा वाटिका और तालाबों से युक्त हो, वे ग्राम कहलाते हैं। जिस ग्राम में सौ घर हों अर्थात् सौ कुटुम्ब निवास करते हों, वह छोटा गाँव एवं जिसमें पाँच सौ घर हों अर्थात् पाँच सौ कुटुम्ब निवास करते हों, वह बड़ा गाँव कहलाता है। बड़ा गाँव छोटे गाँव की अपेक्षा धन सम्पत्ति से ज्यादा समृद्ध होता हैं बड़े ग्राम में सभी प्रकार के पेशे वाले व्यक्ति निवास करते हैं, पर छोटे ग्राम में कृषक, चर्मकार और कुम्भकार ही निवास करते है। छोटे गाँव की सीमा एक कोस और बड़े गाँव की सीमा दो कोस की होती है। गाँवों में अन्न की खेती होती है, खेतों में मवेशी के लिये घास उत्पन्न होती है तथा जलाशय भी प्रत्येक गाँव में होते है। नदी, पर्वत, गुफा,श्मसान, क्षीरवृक्ष, कटीले वृक्ष, वन एवं पुल प्रभृति गाँवों की सीमा के चिन्ह माने गये हैं। तथ्य यह है कि ग्रामों की सीमा का विभाजन नदी, पर्वत, गुफा, श्मसान एवं वृक्ष विशेषों से किया जाता है। इस प्रकार आदि पुराण से गाँव की विशेषता निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर अवगत की जा सकती है :-

1 कृषक, कुम्भकार, चर्मकार, लुहार, बढ़ई प्रभृति पेशेवरों का निवास।

2 वृक्षों का सद्भाव, वाटिका और उपवन की स्थिति।

3 जलाशय कुआँ, तालाब आदि का निर्माण।

4 निवासियों की आवश्यकता की वस्तुओं की उत्पत्ति।

5 बड़े गाँवों में संसाधन सामुदायिक विकास कार्यक्रम की व्यवस्था।

6 सिचाई एवं भूमिसुधार संबन्धी योजनाओं का सद्भाव।?

7 जल की सुगमता, भूमि की उर्वरता आदि का अस्तित्व।

8 चरागाहों एवं पशुओं के विचरण करने की भूमि की व्यवस्था।

नगरः- जिसमें पारिखा, गोपुर, अटारी, कोट और प्रकार निर्मित हों तथा सुन्दर सुन्दर भवन बनें हुये हो, वह नगर है। नगर में वाटिका, वन, उपवन, और सरोवरों का रहना आवश्यक है। नालियाँ भी इस प्रकार से बनवानी चाहिये, जिसमें पानी का प्रवाह पूर्व और उत्तर के बीच वाली ईशान दिशा की ओर प्रवाहित होता है। [५४] नगर शब्द की व्युत्पत्ति ‘‘ न गच्छति इति नगः, नग एव प्रसादाः सन्त्यत्र’’ की जा सकती है। जिसमें उन्नत प्रासाद हों और जो पक्के बनाये गये हों तथा उनकी दीवालें और छतें पाषाण शिलाओं से निर्मित हों, उन्हें नगर कहा जाता है। मानसार में जिनसेन स्वामी की परिभाषा के तुल्य नगर की परिभाषा दी गई है। बताया है- जहाँ पर क्रय- विक्रय आदि विभिन्न व्यवहार सम्पन्न होते हैं, अनेक जातियों और परिवारों के व्यक्ति निवास करते हैं। विभिन्न श्रेणियों के कर्मकार बसते हों और जहाँ सभी धर्मावलम्बियों के धर्मायतन स्थित हों, वह नगर हैं।[५५]

वास्तुशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार चारों दिशाओं पर द्वार होने चाहिये। ये सब द्वार गोपुरों से परिवेष्टित रहने चाहिये। नगर में वासभवनों का सम्यक विन्यास रहता है। यातायात एवं क्रय - विक्रय आदि के कारण तत्परता संकीर्णता एवं सम्पन्नता पद पर परिलक्षित होती है। आदि पुराण की परिभाषा का स्फोटन करने पर नगर की निम्नलिखित विशेषतायें उपलब्ध होती हैं।

1 यथोचित एवं उपयुक्त विन्यास योजना।

2 प्रासाद, हर्म्य, उपयुक्त आदि से समृद्ध।

3 प्रचुर जलव्यवस्था तथा जलाशयों का सुन्दर रूप में निर्माण।

4 आबादी की असंकीर्णता।

5 विस्तृत मार्ग।

6 गन्दगी, जल एवं दूषित पदार्थों को दूर करने के हेतु नालियो की व्यवस्था।

7 विपुल वायुसंचरार्थ एवं वायुसेवनार्थ बाटिका और उपवनों का सद्भाव।

8 सौविध्यपूर्ण यातायात के साधन।

9 सुरक्षार्थ परिखा, गोपुर, कोट और प्राकार संघटन।

10 पूजा, शिक्षा, क्रीड़ा एवं मनोरंजन के उपयुक्त स्थानों की यथोचित् व्यवस्था।

खेट :-आदिपुराण में नदी और पर्वत से घिरे हुये नगर को खेट कहा है। [५६] समरांगण सूत्रधार के अनुसार खेट ग्राम और नगर के बीच का है। यह नगर से छोटा और ग्राम से बड़ा होता है। अतएव नगर के विष्कम्भ के आधे प्रमाण खेट का विष्कम्भ प्रतिपादित किया गया है। [५७] ब्रम्हाण्डपुराण में बताया गया है कि नगर से एक योजन की दूरी पर खेटक या खेटका निवेश अभीष्ट है। नगर के मार्गों का विष्कम्भ ३० धनुष होता है। पर खेट मार्गों का २० धनुष। अतएव ब्रम्हाण्डपुराण और समरांगण सूत्रधार से यह स्पष्ट होता है कि खेट छोटा नगर है, जो समतल भूमिपर किसी सरिता के तट पर स्थित होता है तथा इसकी स्थिति छोटी छोटी पहाड़ियों के समीप भी रह सकती है। खेट वस्तुतः खेड़ा का रूप है, इसके चारों ओर ग्राम होते हैं। शिल्परत्न में बताया गया है - ‘‘ ग्रामयोः खेटकं मध्ये राष्ट्रमध्ये खर्वटम्’’ ग्रामों के मध्य में एक समृद्ध लघुकाय नगर को खेट कहा जाता है तथा राष्ट्रमध्य में उसी को खर्वट की संज्ञा दी गई है। खेट की अन्य विशेषता भी है कि इसकी आबादी शूद्रों तथा कर्मकारों की होती है। खेट की अन्य विशेषतायें आदिपुराणानुसार निम्नलिखित हैं।

1 नदी तथा पर्वत की तलहटी में अवस्थिति।

2 खेट का ग्राम से बड़ा होने के कारण नगर रूप में विकास।

3 नदी पर्वत से संरूद्ध होने से ओद्योगिक विकास के साधनों की प्रचुरता ।

4 कृषि तथा सभी पेशे के लोगों का निवास।

खर्वट नामक चौबीस हजार, मडम्ब नामक चार हजार और पट्टन अड़तालीस हजार होते हैं।

खर्वट :-खर्वट को पार्वत्य प्रदेश से वेष्टित माना जाता है। सब प्रकार के मनुष्यों से आवासित एवं चारों ओर पर्वतों से आच्छादित नगरों को खर्वट कहा जाता है। इस नगर का आकार बहुत बड़ा न होकर साधारण रहता है। अतः जिन नगर के चारों ओर पहाड़ियां हो उसका प्रकार तो स्वयं ही पहाड़ियों से बन जायेगा। कौटिल्य ने खर्वट को एक दुर्ग के रूप में कहा है। यह दौ सौ ग्रामों के रक्षणार्थ निविष्ट होता था। मानसार में खर्वट का प्रयोग ग्राम विशेष के साथ राजकीय भोजनशालीय मण्डप के लिये भी आया है।

मडम्बः-मडम्ब उस बड़े नगर को कहा गया है जो पांच सौ ग्रामों मध्य में व्यापार आदि का केन्द्र हो। मडम्ब बस्तुतः व्यापार प्रधान बड़े नगर को कहा गया है। इसमें एक बड़े नगर की सभी विशेषतायें रहती हैं।

पट्टनः-जो समुद्र के तट पर बसा हो और जहां नावों के द्वारा आवागमन होता हो। समवारांगणसूत्र में राजाओं के उपस्थान अर्थात ग्रीष्मकालीन राजपीठ पत्तन कहा गया है। जहां वहुत सारे व्यापारी हो और जो बन्दरगाह हो, उसे पुटभेदन कहा जाता है।

चक्रवती के पास निन्यानवे हजार द्रोणमुख और चौदह हजार प्रमाण संवाहन हुआ करते हैं।

द्रोणमुखः-जो नगर किसी नदी के तटपर स्थित हो वह द्रोणमुख कहा जाता है। वस्तुतः यह एक प्रकार आपणक नगर है। यहां पर व्यावसायियों

का आना जाना लगातार रहता है। इसकी स्थिति किसी नदी तट पर, सरिता संगम पर, सागर बेला पर बताई गई है। इसका एक नामान्तर द्रोणमुख भी आया है।

संवाहनः-उस प्रधान गांव को संवाहन कहा गया है, जिसमें मस्तक पर्यन्त ऊँचे- ऊँचे धान्य के ढेर लगे हों, आदि पुराण के इस वर्णन से स्पष्ट है कि यह एक समृद्ध ग्राम है, जो नगर के तुल्य है। बृहत्कथाकोश में वाहन संवाह के अर्थ में प्रयोग हुआ है और इसे अद्रिरूढम पर्वत पर बसा हुआ ग्राम कहा गया है।

चक्रवर्तियों के छप्पन अन्तर्द्वीप, सात सौ कुक्षिनिवास और अट्ठाईस हजार दुर्गादिक होते हैं।

राजधानीः- जनपद अथवा मण्डल विशेष के कतिपय नगरों से एक नगर को राजधानी चुना जाता था। शासन सौविध्य अथवा अनुकूल स्थिति ही इस निर्वाचन का कारण माने गये है। आदि पुराण में राजधानी के अन्तर्गत आठ सौ ग्रामों को गृहण किया है। जिस नगर की आवादी घनी हो और जो चारों ओर दीवाल परिखाओं और प्राकारों से परिवृत्त हो, वह नगर राजधानी बनता है। मयमत शिल्पशास्त्र में जिस नगर की आवादी पश्चिम तथा उत्तर में हो, वह राजधानी बनता है। जहां पर पश्चिम एवं उत्तर भू भागों पर जनावासों की स्थिति हो तथा पूर्व, दक्षिण भूभागों पर राजकर्मचारियों, सेनानियों एवं सैनिकों की वासभवन हो तथा द्वारों पर गोपुरों की मालायें शोभित हों, नगराभ्यन्तर प्रवेश पर सभी प्रमुख देवों के देवालय स्थित हो, नाना गणिकायें भी निवास करती हो, राजप्रासाद के साथ अश्वशाला, गजशाला, अस्त्र-शस्त्र शालायें भी जहां पर विद्यमान हों, विभिन्न जाति और वर्ग के व्यक्ति जहां निवास करते हों तथा सभी प्रकार की वस्तुये सुलभता पूर्वक प्राप्त होती हो, इस प्रकार के नगर को राजधानी की संज्ञा दी जाती है।

चक्रवर्ती के दशांगभोग - चक्रवर्ती के बिलक्षण जीवन में कई सौभाग्य एवं भोगपभोग प्राप्त होते हैं जो अन्य किसी को प्राप्त नहीं होते हैं यथा

1. **दिव्यपुरः-** चक्रवर्ती के दिव्यपुर में गौशाला, छावनी, महल, सभाभूमि, नृत्यशालायें, शीतगृह, निवास भवन, भण्डारगृह, कोठार आदि व्यवस्थित रूप से स्थापित रहते हैं। जिनका चक्रवर्ती समयानुसार प्रयोग करता है।

2. **दिव्यरत्नः-** चक्रवर्ती के पुण्य से चक्ररत्न आदि सात अजीव रत्न एवं सुभद्रा आदि सात जीव रत्न होते हैं। जिनका भोगोपभोग केवल चक्रवर्ती ही कर सकता है। इनके एक एक हजार रक्षकदेव होते हैं।

3. **दिव्य निधिः-** चक्रवर्ती पुण्योदय से काल - महाकलादि नव निधियाँ स्वमेव उपस्थित होकर चक्रवर्ती को भोगोपभोग की सामग्री जीवन पर्यन्त उपलब्ध कराती हैं।

4. **दिव्य सेनाः-** चक्ररत्न, अश्वसेना, गज सेना, रथ सेना आदि सात प्रकार की सेना चक्रवर्ती की दिग्विजय में सहयोगी होती है।

5. **दिव्यभाजनः-** चक्रवर्ती के वैभव में एक करोड़ थालियों सहित सभी प्रकार के दिव्य भाजन (वर्तन) होते हैं।

६. **दिव्यभोजन :-** चक्रवर्ती की सेवा में नियमित तीन सौ साठ रसोईये विभिन्न प्रकार के व्यंजन, महाकल्याण भोजन रसोई तैयार करते हैं, जिसमें अमृत गर्भ नामक खाद्य पदार्थ, अमृत कल्प नामक स्वाद्य पदार्थ तथा अमृत नामक पेय पदार्थ तैयार करते हैं। **अमृतपानकः-**भरत चक्रवर्ती के पेय पदार्थों में अमृत पान का निर्देश आया है। यह पानक यों तो दिव्य है, पर इसका प्रस्तुतीकरण दुग्ध,कुंकुम, कस्तूरी एवं अन्य मधुर और सुगन्धित पदार्थों के संयोग से किया जाता था। स्वाद और गुण दोनों ही यह अमृत समान था।

मोचः- कदलीफल लिये मोच का प्रयोग हुआ है । यह विशेष प्रकार का केला है।

क्रमुकः- सुपाड़ी विशेष है।

7. **दिव्यशैयाः-**चक्रवर्ती के शयन के लिये सिंहवाहिनी नामक शैया होती है जिस पर केवल चक्रवर्ती ही शयन करता है।

8. **दिव्य आसन :-**चक्रवर्ती के बैठने के लिये दिव्यासन होता है,जो चांदनी, छत्र, चंवर आदि से सुसज्जित रहता है।

9. **दिव्यवाहनः-** विशिष्ट रथ, अश्व, हस्ति आदि सभी दिव्य वाहन के रूप में चक्रवर्ती उपयोग करते हैं।

10. **दिव्यनाट्य :-** चक्रवर्ती के मनोरंजन के लिये वर्धमानक नृत्यशाला में देवांगनायें, नृत्यांगनायें, स्वरसाधक दिव्यनाट्य शालाओं में अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं।

चक्रवर्ती के पाँच इन्द्रियों का विषय बल स्वरूपः-

1 स्पर्शनेन्द्रिय से 9 योजन तक का विषय जान लेते हैं।

2 रसनेन्द्रिय से 9 योजन तक विषय जान लेते हैं।

3 घ्राणेन्द्रिय से 9 योजन तक विषय जान लेते हैं।

4 चक्षु इन्द्रिय से 47263,6/20 योजन तक देख लेते हैं।

5 श्रोत्रेन्द्रिय से 12 योजन तक का शब्द सुन लेते हैं।

चक्रवर्ती के आभूषण, मणियां और उनके प्रकारः-रत्नजड़ित आभूषणों में विभिन्न प्रकार की मणियों का प्रयोग किया जाता था। आदिपुराण में इन्द्रमणि,पद्यरागमणि, मरकतमणि,स्फटिकमणि, मुक्ता, गोमुखणि, वज्र, हीरा आदि का उल्लेख मिलता है। इन्द्रनीलमणि के दो प्रकार बताये गये हैं। हल्के नीले रंग की और गहरे नीले रंग की। गहरे नीले रंग की मणि को महा इन्द्रमणि और हल्के नीले रंग की मणि को इन्द्रनीलमणि कहा गया है।

सिर के आभूषणः- शरीर में सबसे उत्तम अंग मस्तक को और सिर को माना गया है। सिर के आभूषणों का निर्देश आदिपुराण में पाया जाता है।

साधारणतः इसे मुकुट की ही पर्याय माना जा सकता है, पर यह स्मरणीय है कि मुकुट से इसमे कुछ भिन्नता पाई जाती है। मुकुट में मणि हो या न हो, परन्तु चूड़ामणि के बीच में एक बहुत बड़ी मणिका होना आवश्यक है। चूड़ामणि का व्यवहार सामन्त और राजन्य दोनों में ही पाया जाता है।

सिर में उपयोग किये जाने वाले आभूषण के प्रकार

किरीटः- इसे बड़े राजा - महाराज धारण करते थे, किरीट का जहां भी वर्णन आता है, वहां उसे बड़े - बड़े राजा और युवराज ही धारण करते हुये दिखलाये गये है। प्रभावशाली महाराजाओं की सूचना किरीट द्वारा ही प्राप्त होती थी। किरीट स्वर्ण द्वारा निर्मित होता था।

मुकुटः- किरीट की अपेक्षा मुकुट का मूल्य थोड़ा कम होता है। रत्नजड़ित तो यह भी होता था, पर इसमे चूड़ामणि के समान बीच में बड़ा रत्न नहीं रहता था। इसमें ताम्र, झाम, और झालर भी लगी रहती थी, ऐसा उल्लेख आदिपुराण में भी मिलता है कि भगवान आदिनाथ को इन्द्र ने स्वयं ही मुकुट धारण कराया था। इसमें संदेह नहीं है कि मुकुट का महत्व प्राचीनकाल में बहुत अधिक था।

मौलिः- इसका स्थान भी किरीट से नीचे प्रतीत होता है, सिर के आभूषणों में मौलि का स्थान विशेष महत्वपूर्ण होता है। मुकुट का विशेष प्रकार ही मौलि है। जो राजा आदि तीर्थंकर और चक्रवर्ती को नमस्कार करते थे उनके सिर पर मौलि हुआ करती थी, परन्तु यह जरूरी नहीं है कि राजा होने पर ही इसे धारण किया जाये, युवराज अवस्था में भी इसे

पहनते थे।

उतंसः- उतंस किरीट से भी उत्तम कोटि का मुकुट है। यह दिव्यरत्न जड़ित होता था। इसका उपयोग चक्रवती समकालीन विशेष राजा महाराज ही करते थे, उतंस की सुन्दरता सभी प्रकार के मुकुटों से अधिक होती थी। और उतंस को सिर्फ धर्म नेता ही धारण करते थे।

कुन्तलीः- कुन्तली का उल्लेख किरीट के साथ आया है, इसमें यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि कुन्तली किरीट से आकृति में बड़ी होती थी और इसे केशों में कलगी के रूप मे लगाया जाता था। किरीट धारण करने पर ही कुन्तली धारण की जाती थी। किरीट के बिना कुन्तली का महत्व नहीं था।

पट्टः- पट्ट पांच प्रकार के होते हैं।

1 राजपट्ट 2 महिषीपट्ट 3 युवराजपट्ट

4 सेनापतिपट्ट 5 प्रसादपट्ट

चक्रवर्ती दिग्विजय यात्रा

चक्र रत्न उत्पन्न होने के उपरान्त चक्रवर्ती तीर्थंकर भगवान के दर्शन पूजन पश्चात्, शरद ऋतु में पूर्व दिशा की ओर चक्ररत्न को आगे कर नगाड़ें आदि की मुधर ध्वनि के साथ मंगलमय वस्त्राभूषण मुकुट,कुण्डल, कौस्तुभ मणि, छत्र, धारण किये हुये दस पहियो वाले अजितंजय नामक अपने रथ पर सवार हो चतुरंगिणी सेना के साथ दिग्विजय के लिये उद्योग किया।

सेना में क्रमानुसार प्रथम पैदल सैनिक, अश्वारोही सैनिक, रथों पर अवतीर्ण राजा - महाराजाओं का पताकाओं से अच्छादित समूह था। अयोध्यापुरी से वह सेना गोपुरद्वार को पार करती हुई दण्डरत्न को आगे कर सेनापति सबसे आगे चलता है जो ऊँचे - नीचे दुर्गम वनस्थलों को लीलापूर्वक एक सा करता जाता है और वह सेना धीरे- धीरे प्रस्थान करती है गंगद्वार से प्रवेश कर गंगा के रमणीक वन में सेना का प्रथम पड़ाव होता है। पूर्व दिशा के राजा -महाराजा चक्रवर्ती का यशोगान देखकर पारम्परिक कुलानुकूल भेंट देकर तथा अपनी कन्यायें प्रदान कर चक्रवर्ती महाराज की अनेक विधियों से यशोगान रूप आराधना की।

रात्रिकालीन विश्राम और प्रातः नित्यक्रियाओं के पश्चात् चक्रवर्ती महाराज अपनी सवारी परिवर्तित कर विजयार्धपर्वत के प्रमुख हाथी पर सवार हुये। शत्रुसमूह के पराक्रम को नष्ट करने वाला तथा स्वयं दूसरों के द्वारा उल्लंघन करने योग्य चक्ररत्न और शत्रुओं को दण्डित करने वाला दण्डरत्न ये दोनों ही रत्न चक्रवर्ती की सेना के आगे चलते हैं। चक्ररत्न और दण्डरत्न एक एक हजार देवों द्वार रक्षित होता है। वास्तव में चक्रवर्ती की विजय के ये दोनों ही कारण होते हैं। शेष सामग्री तो केवल शोभा के लिये होती है।

पूर्व दिशा में संधि आदि गुणों के विषय में कोई भी राजा महाराज चक्रवर्ती के बरावर नहीं था इसीलिये इन्हें किसी से संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वेधीभाव, आश्रय नहीं करने पड़े थे। अतः पूर्व दिशा को लगभग चक्रवर्ती महाराज द्वारा विना किसी अस्त्र,शस्त्र का प्रयोग किये ही अपने प्रभुत्व से लगभग जीत लिया।

आगे गमन करते हुये चक्रवर्ती और सेना के समक्ष विशाल समुद्र पड़ता है ,जो कि अलंघनीय प्रतीत सा होता है। तब गंगानदी के उपवन में ही समस्त सेना के साथ विश्राम हेतु रुकते हैं। यद्यपि मागध देव को वश में करना चक्रवर्ती महाराज के लिये कोई कठिन कार्य नहीं था परन्तु देव की प्रामाणिकता मानकर लवण समुद्र को जीतने के लिये तत्पर हुये चक्रवर्ती महाराज ने भगवान अरहन्त देव का आराधन करने का विचार किया और विशिष्ट आराधना पूर्वक जलस्तंभन विद्या को सिद्ध किया। तदोपरान्त अपने अजितंजय नामक रथ पर सवार होकर समुद्र में बारह योजन अन्दर जाकर रुके और अपने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर मागधदेव की ओलगशाला के रत्नमय कलश का भेदन अमोघ वाण के द्वारा करते हैं। मागध देव वाण के शब्द को सुनकर क्रोध धारण करता है, लेकिन मंत्रियों के समझाने पर चक्रवर्ती महाराज की क्षमता का विवेचन सुन क्रोध को शान्त कर विभिन्न आभूषणों के साथ महाराज चक्रवर्ती को प्रणाम निवेदित करते हुये कई तरह से मंगल आशीष प्रदान करता है। चक्रवर्ती महाराज भी उसे अभयवचन देकर मागधदेव के साथ कटक में प्रवेश कर विजय के लिये प्रस्थान करते हुये उपवन के बीच से होते हुये द्वीप के प्रदक्षिण रूप में जम्बूद्वीप के वैजयन्त नामक उत्तम दक्षिण द्वार के समीप तक जाते हैं और चक्रवर्ती महाराज अपने नामांकित वाण वस्तनु नामक देव को वश में करते हैं। पुनः वहां से आकर और कटक में प्रवेशकर द्वीपोपवन के मार्ग से सिन्धुनदी सम्बंधी वन वेदिका की ओर जाते हैं

और उसके तोरण द्वार पर पहिले के समान ही सेना ठहर जाती है तथा चक्रवर्ती सिन्धुनदी द्वार में प्रविष्ट होकर प्रभासदेव को सिद्ध करते हैं।

वहां से पूर्वाभिमुख होकर द्वीपोपवन द्वार की सीढ़ियों पर चढ़कर वन के मध्य से उपवन समुद्र की सीमा तक जाते हैं।

समुद्र के समीप की वेदी के द्वार से वे पंचांग बल निकलकर विजयार्द्धगिरि की वनवेदिका तक नदी के तीर से जाते है । फिर इसके आगे उस वन वेदिका का आश्रय करके पूर्वदिशा में उस पर्वत के मध्य कूट के समीप में वेदीद्वार पर्यन्त जाते हैं तदुपरान्त उस वेदीद्वार से प्रविष्ट होकर वन के मध्य में से उत्तर की ओर गमन करते हैं और रजताचल अर्थात् विजयार्द्ध के तट की वेदी को पाकर वहां पर ही ठहर जाते हे।

उस समय विजयार्द्ध के मध्यम कूट पर रहने वाला वैताढ्‌य नामक व्यन्तर देव आगन्तुक भय से विकल होता हुआ प्रणाम करके चक्रवर्ति की सेवा करता है, आदर, सत्कार करता है। उस पर्वत के दक्षिण भाग में स्थित पचास नगरों के विद्याधर समूहों को सिद्ध करके पूर्वोक्त तोरण द्वार से वापस आते हैं। उसी के आगे उस वनवेदी का आश्रय करके पश्चिम की ओर जाते हैं और सिन्धुवन वेदी के पास में उस पर्वत के दिव्य वन में प्रवेश करते हैं तब उस पर्वत पर रहने वाला कश्तमाल नामक व्यन्तर देव आकर के विजयार्द्ध पर्वत के द्वार कपाटों के खोलने का उपाय बतलाता है।

उसके उपदेश से सर्वविधि को भलीभांति समझकर सेनापति तुरंग रत्नपर चढ़कर और दण्ड रत्न को ग्रहण करके षडंगबल सहित निकला । वह सिन्धुवन वेदी के द्वार में प्रवेश करके पर्वतीय वेदी के तोरण द्वार में होकर सैन्यसहित स्कंधप्रभा (खण्डप्रपात) नामक गुफा की सीढ़ियों पर चढ़ता है। सौ सीढ़ियों से पश्चिम की ओर जाकर और फिर दक्षिण की ओर से सब सैन्य को उतारकर वह सेनापति नदीवन के मध्य होकर जाता है।

तदुपरान्त सेनापति चक्रवर्ती अरनाथ की आज्ञा प्राप्त कर हस्ततल में धारण किये हुये दण्डरत्न से दोनों कपाटों को ठोकर मारता हैं। उद्‌घाटित कपाटयुगल के भीतर स्थित उष्णता के भय से बारह योजनप्रमाण क्षेत्र को तुरंग रत्न से लांघते हैं।

वह दक्षिण की ओर जाकर निवासित सैन्य पड़ाव में प्रवेश करने के पश्चात् सेनापति पश्चिमाभिमुख होकर वन को जाता है और दक्षिणमुख होकर पर्वतीय वनवेदी के तोरणद्वार में से निकलकर सैन्य संयुक्त होता हुआ वह म्लेच्छखण्ड को सिद्ध करता है। वह सेनापति छह मास में सम्पूर्ण म्लेच्छ खण्ड को वश में करके पूर्वमार्ग से वैताढ्‌य गुहा के द्वारपर्यन्त आता है और वहां वह देवसेना को द्वारका रक्षक करके म्लेच्छ राजाओं से परिचारित वह सेनापति विशाल वन में प्रविष्ट होकर चक्रवर्ती के चरण कमलों में नमस्कार करता है। इस प्रकार दक्षिण भरत में खण्डों को अनायास ही जीतकर चक्रवर्ती अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ सिन्धुनदी के विशाल वन में प्रवेश करते हैं और गिरितट संबंधी वेदी के द्वार में प्रवेश करके गिरिद्वार की रत्नमय सीढ़ियों पर चढ़कर सम्पूर्ण सेना उस नदी के दोनों किनारों पर से जाती है।

दोनों तीरों की वीथियों में से प्रत्येक का विस्तार दो - दो योजनप्रमाण है। उनमें महा अन्धकार होने से चक्रवर्ती का सैन्य आगे जाने के लिये समर्थ नहीं होता है। तब देवों के उपदेश से विजयार्द्ध पर्वत की गुफा की दोनों भित्तियों पर काकणी रत्न से शीघ्र ही चन्द्रमण्डलों और सूर्यमण्डलों को लिख दिया। एक -एक योजन के अन्तराल से लिखे हुये उन बिंबों के प्रकाश देने पर षडंग बल उन्मग्न - निमग्न जल नदियों तक जाता है। उन नदियों के गहरे और दूर तक विस्तीर्ण जलप्रवाह को उतरने के लिये चक्रवर्तीयों का सकल सैन्य बल सफल नहीं होता है। तब देव के उपदेश से बढ़ई रत्न के द्वारा पुल की रचना करने पर षडंग बल पुल पर चढ़ता है और उन नदियों को पार करता है। इस प्रकार आगे गमन करते हुये

नदी के पूर्व वेदीद्वार से पर्वतवन के मध्य में पहुंचने के लिये चक्रवर्ती सैन्यसहित विजयार्द्ध की गुफा के उत्तरद्वार से निकला । वहां चक्रवर्ती प्रशस्त शोभा को प्राप्त, विस्तृत एवं मनोहर तथा नाना वृक्षों से मंडित वन में पड़ाव में सम्मिलित हो जाता है और चक्रवर्ती मध्ययम म्लेच्छखण्ड को जीतने के लिये सैन्य सहित पर्वतीय वनवेदी के द्वारमार्ग से निकलते हैं। उस समय म्लेच्छमही की ओर प्रस्थित हुये उनके साथ सब म्लेच्छ राजा कुलदेवताओं के बल से अतिशय घोर युद्ध करते हैं। अनन्तर वे चक्रवर्ती म्लेच्छ राजाओं की जीतकर सिन्धुनदी के तटवर्ती मार्ग से उत्तर की ओर जाकर सिन्धुदेवी को वश में करते हैं। इसके पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर हिमवान् पर्वत संबंधी वन के वेदीमार्ग से हिमवान् कूट के समीप तक जाकर वे चक्रवर्ती अपने नाम से अंकित वाण के द्वारा वेधकर हिमवान् कूटपर स्थित हिमवान् नामक व्यंतर देव को अपने वश में करते हैं। अनन्तर वे दक्षिणभाग से वृषभगिरिपर्यन्त जाकर अपना नाम लिखने के लिये पर्वत के तोरणद्वार में प्रवेश करते हैं। वहां जाकर पूर्व में हुये चक्रवर्तियों की बहुत सी विजयप्रशस्तियों से निरन्तर भरे हुये वृषभगिरि को सैनिकों सहित प्रदक्षिण रूप से देखते हैं।पुनः निज नाम को लिखने के लिये पर्वत पर तिलमात्र भी स्थान न पाकर चक्रवर्ती विजयाभिमान से रहित होकर चिन्तायुक्त खड़े रह जाते हैं। तब मंत्रियों और देवताओं के उपरोध ावश एक स्थान में पूर्व चक्रवर्तियों के नामों को दण्ड रत्न से नष्ट करके और अपना नाम लिखकर वहां से उत्तर की ओर जाते हुये गंगाकूट को पाकर गंगादेवी को वश में करते हैं।

इसके पश्चात् वे चक्रधर गंगानदी के तटवर्ती मार्ग से दक्षिण की ओर जाकर विजयार्द्ध पर्वत के वन में ठहर जाते हैं। पुनः चक्रवर्ति महाराज की आज्ञा से सेनापति तिमिश्रगुफा के दोनों कपाटों को खोलकर और पूर्व म्लेच्छखण्ड को भी वश में करके वहां से कटक में प्रवेश कर प्रसन्न एवं

भक्तिभाव से युक्त हो महाराज चक्रवर्ती के चरण कमलों में प्रणाम निवेदित करते हुये दासत्व को प्रगट करते हैं।

विजयार्द्ध की उत्तर दिशा में स्थित नगरों के विद्याधर राजा भी चक्रवर्ती महाराज के चरण कमलों में नमस्कार करते हुये दासत्व को स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार वे च्रक्रवर्ती उत्तर भाग में सम्पूर्ण भूमिगोचरी और विद्याधरों को वश में करके सैन्य से युक्त होते हुये गंगा नदी की वन वेदी तक जाते हैं। उस वेदी के द्वार से उसकी उपवन भूमियों में लीला से प्रवेश करके समस्त सैन्य दक्षिण मुख से निकलता है। तत्पश्चात् पर्वत की तटवेदी के द्वार जाकर और फिर गुफाद्वार के रत्नसोपानों पर चढ़कर वह षडंग बल नदी के दोनों तीरों पर से जाता है। उस पर्वत के द्वार में से प्रवेश करके वह सैन्य नदी के दोनों ओर दो तीरो पर दो - दो योजन विस्तारवाल तटवीथियों पर से जाता है।

पूर्व के समान ही गुफाद्वार के बीच से जाकर और दक्षिणद्वार से निकलकर वह षडंगबल से गंगावन के

मध्य में आ पहुंचता है। इसके पश्चात् सैन्य से परिवारित चक्रवर्ती नदी की वनवेदी के द्वार से जाकर पर्वतसंबंधी वन के मध्य में ठहर जाते हैं। पुनः चक्रवर्तियों की आज्ञा से सेनापति छह मास में पूर्व म्लेच्छखण्ड को भी वश में करके स्कन्धावार में आ मिलता है। अनन्तर चक्रवर्ती उस पर्वत की वनवेदी के दक्षिण मुख तोरणद्वार से निकलकर अपने - अपने नगरों में प्रवेश करते हैं।

:- चक्रवर्ती परिचयः-

1 **भरतचक्रवर्तीः-** इनके शरीर का प्रमाण पाँच सौ धनुष था तथा आयु चौरासी लाख पूर्व थी, जिसमें कुमार काल सतत्तर लाख पूर्व, मण्डलीक काल एक हजार वर्ष प्रमाण, दिग्विजय काल साठ हजार वर्ष, राज्यकाल साठ हजार पूर्व इकसठ हजार वर्ष एवं संयम काल एक लाख

पूर्व का था एवं इन्होनें अपनी साधना के सुफल से मोक्ष पद को प्राप्त किया। इनका जन्म भगवान ऋषभदेव तीर्थंकर के काल में हुआ था अर्थात् यह भगवान ऋषभदेव के ही पुत्र थे।

2 **सगर चक्रवर्तीः-** इनके शरीर का प्रमाण चार सौ पचास धनुष था तथा आयु बहत्तर लाख पूर्व थी, जिसमें पचास हजार पूर्व का कुमार काल, पचास हजार पूर्व का मण्डलीक काल, तीस हजार वर्ष का दिग्विजय काल, सत्तर हजार पूर्व, तीस हजार वर्ष का राज्यकाल एवं एक लाख पूर्व का संयम काल रहा एवं इन्होनें अपनी साधना के सुफल से मोक्ष पद को प्राप्त किया। इनका जन्म तीर्थकर भगवान अजित नाथ के समय में हुआ था।

3 **मघवा चक्रवर्तीः-** इनके शरीर का प्रमाण साढ़े व्यालीस धनुष था तथा आयु पाँच लाख वर्ष की थी, इनका कुमार काल पच्चीस हजार वर्ष का, मण्डलीक काल पच्चीस हजार वर्ष का, दिग्विजय काल दस हजार वर्ष का, राज्यकाल उनतालीस हजार वर्ष का एवं संयम काल पचास हजार वर्ष का रहा । इनका जन्म भगवान धर्मनाथ के पश्चात एवं भगवान शांतिनाथ के पूर्व में हुआ था। इन्होनें साधना के सुफल से सानत्कुमार स्वर्ग में अवतरण किया।

4 **सनत्कुमार चक्रवर्ती :-** इनके शरीर का प्रमाण व्यालीस धनुष तथा आयु तीन लाख वर्ष की थी जिसमें इनका कुमार काल पचास हजार वर्ष, मण्डलीक काल पचास हजार वर्ष, दिग्विजय काल दस हजार वर्ष, राज्यकाल नब्बे हजार वर्ष एवं संयम काल एक लाख वर्ष का रहा, इन्होनें अपनी साधना के सुफल से सानत्कुमार स्वर्ग में अवतरण किया। और इनका जन्म काल भी भगवान धर्मनाथ के पश्चात् एवं भगवान शांतिनाथ के पूर्व का था।

5 **शान्तिनाथ चक्रवर्तीः**- इनके शरीर का प्रमाण चालीस धनुष तथा आयु तीन लाख वर्ष की थी जिसमें पच्चीस हजार वर्ष का कुमार काल, पच्चीस हजार वर्ष का मण्डलीक काल, आठ सौ वर्ष का दिग्विजय काल,

चौबीस हजार दो सौ वर्ष का राज्यकाल एवं पच्चीस हजार वर्ष का संयमकाल रहा । इन्होने अपनी साधना के सुफल से मोक्ष को प्राप्त किया। ये तीर्थकर, चक्रवर्ती और कामदेव तीन पदवियों के स्वामी थे।

6 **कुन्थुनाथ चक्रवर्तीः-** इनके शरीर का प्रमाण पैंतीस धनुष तथा इनकी आयु पंचानवे हजार वर्ष की थी जिसमें तेईस हजार, सात सौ, पचास वर्ष का कुमार काल, तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष का मण्डलीक काल, छह सौ वर्ष का दिग्विजय काल, तेईस हजार, एक सौ पचास वर्ष का राज्यकाल एवं तेईस हजार, सात सौ पचास वर्ष का संयम काल रहा, इन्होंने अपनी साधना के वृक्ष पर मोक्ष रूपी फल को फलीभूत किया। ये तीन पदों के धारी कामदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकर तीनों थे।

7 . अरनाथ चक्रवर्तीः- अरनाथ चक्रवर्ती का विस्तृत वर्णन अगले पृष्ठ पर किया जा रहा है।

8 सुभौम चक्रवर्ती :- इनके शरीर का प्रमाण अठ्ठावीस धनुष प्रमाण का था तथा इनकी आयु साठ हजार वर्ष की जिसमें पांच हजार बर्ष का कुमार काल, पांच हजार वर्ष का मण्डलीक काल, चार सौ वर्ष का दिग्विजय काल, उनन्चास हजार, पांच सौ वर्ष का राज्यकाल तथा इक्कीस हजार वर्ष का संयम काल रहा । इन्होंने मरणोपरन्त सप्तम नरक की आयु का बंध होने से सप्तम नरक में वासित हुये। इनका जन्म भगवान अरनाथ तीर्थंकर के शासनकाल में ही हुआ।

9 पद्मचक्रवर्तीः- इनके शरीर का प्रमाण बाईस धनुष तथा आयु तीस हजार वर्ष की थी जिसमें इनका कुमार काल पांच सौ वर्ष, मण्डलीक काल पांच सौ धनुष, दिग्विजय काल तीन सौ वर्ष, राज्यकाल अठारह हजार सात सौ वर्ष एवं संयमकाल दस हजार वर्ष का रहा। इनका जन्म भगवान मल्लिनाथ के शासनकाल में हुआ।

10 हरिषेण चक्रवर्तीः- इनके शरीर का प्रमाण बीस धनुष तथा आयु दस हजार बर्ष की थी, जिसमें तीन सौ पच्चीस वर्ष का कुमार काल,

तीन सौ पच्चीस वर्ष का मण्डलीक काल, एक सौ पचास वर्ष का दिग्विजय काल, आठ हजार, आठ सौ, पचास वर्ष का राज्यकाल था एवं तीन सौ पचास वर्ष का संयम काल रहा, इन्होंने अपनी तपाराधना से मोक्ष रूपी लक्ष्मी का वरण किया तथा इनका जन्म तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत के शासनकाल में हुआ ।

11 जयसेन चक्रवर्तीः- इनके शरीर का प्रमाण पन्द्रह धनुष तथा आयु तीन हजार वर्ष की थी जिसमें तीन सौ वर्ष का कुमार काल , तीन सौ वर्ष का मण्डलीक काल, सौ वर्ष का दिग्विजयकाल, उन्नीस सौ वर्ष का राज्यकाल एवं तीन सौ पचास वर्ष का संयम काल रहा। इन्होंने घनघौर तपराधना कर मोक्ष पद को प्राप्त किया। इनका जन्म भगवान नमिनाथ के शासनकाल में हुआ था।

12 ब्रम्हदत्त चक्रवर्तीः- इनके शरीर का प्रमाण सात धनुष तथा आयु सात सौ वर्ष की थी जिसमें सौ वर्ष अट्ठाईस वर्ष का कुमार काल, छप्पन वर्ष का मण्डलीक काल, सोलह वर्ष का दिग्विजय काल, छह सौ वर्ष का राज्यकाल रहा। राज्यकाल में ही मरण होने से ये सप्तम नरक में गये। इनका जनम तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के शासनकाल में हुआ था।

:- अरनाथ चक्रवर्तीः-

इनके शरीर का प्रमाण तीस धनुष तथा आयु चौरासी हजार वर्ष की थी जिसमें इक्कीस हजार वर्ष का कुमार काल, इक्कीस हजार वर्ष का मण्डलीक काल, पांच सौ वर्ष का दिग्विजय काल, बीस हजार छह सौ वर्ष का राज्यकाल एवं तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष का संयम काल था। इन्होनें भी उत्कृष्ट तपाराधना करते हुये मोक्ष तत्व को प्राप्त किया। ये भी तीनों पद अर्थात् कामदेव, चक्रवर्ती एवं तीर्थंकर पदवियों के धारी थे।

जिसने भूमण्डल को संचित करने वाले चक्ररत्न को कुम्भकार के चक्र के समान छोड़ दिया और जिसके अर्हंत्य लक्ष्मी तथा धर्मचक्र की प्राप्ति की

इच्छा से राज्य लक्ष्मी को गृहदासी (पानी भरने वाली) की तरह छोड़ दिया, वे पाप रूपी बैरियों का विध्वंस करनेवाले भगवान अरनाथ, भक्तिभाव से नम्रीभूत और संसार से डरने वाले भव्यजनों की सतत रक्षा करें।

पूर्व भव परिचयः- जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट पर कच्छ नाम का एक देश है। उसके क्षेमपुर नगर में धनपति नाम का राजा राज्य करता था। वह बुद्धिमान था, बलवान था, न्यायवान था। प्रतापवान था और बहुत ही दयावान था। उसने अपने दान से कल्प वृक्षों को और निर्मल यश से शरत् चंद्र के मरीची-मण्डल को भी पराजित कर दिया था। उसकी चतुराई और उसके बल का सब से बड़ा प्रमाण यह था कि उसके जीवन में उसका कोई भी शत्रु नहीं था। वह दीन-दुखी प्राणियों के दुख को देखकर बहुत ही दुखी हो जाता था, इसलिये वह तन-मन-धन से उनकी सहायता किया करता था। उसके राज्य में राजवर्ग तथा प्रजागण-सभी लोग अपनी अपनी आजीविका के उपायों का उल्लंघन नहीं करते थे, इसलिये कोई दुःखी नहीं था।

एक दिन राजा ने अर्हन्नन्दन नामक तीर्थंकर से धर्म का स्वरूप और चतुर्गतियों के दुःखों का श्रवण किया, जिससे उसका चित्त विषयानंद से सर्वथा हट गया। उसने अपना राज्य पुत्र को दे दिया और स्वयं किसी आचार्य के पास दीक्षित हो गया। आचार्य के पास रह कर उसने ग्यारह अंगों को अध्ययन किया तथा दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन किया। जिससे उसे तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया। इस तरह कुछ वर्षों तक कठिन तपस्या करने के बाद उसने आयु के अन्त में समाधि मरण किया, जिससे वह जयन्त नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु तैंतीस सागर प्रमाण थी, लेश्या शुक्ल थी और शरीर की ऊँचाई एक हाथ की थी। वहां वह अवधिज्ञान से सातवें नरक तक की बात जान लेता था। तैंतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था और तैंतीस पक्ष में एक बार सुगन्धित श्वासोछ्वास ग्रहण करता

था। वहां वह प्रवीचार सम्बन्ध से सर्वथा रहित था। उसका समस्त समय जिन पूजा या तत्व चर्चाओं में ही बीतता था। यही अहमिन्द्र आगे के भव में भगवान अरनाथ होगा।

वर्तमान परिचयः- जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कुरुजांगल देश है। उसके हस्तिनापुर नगर में सोमवंशीय काश्यप गोत्री राजा सुदर्शन राज्य करता था। तरह-तरह के कोतुक करते हुये उन दोनों का समय बहुत ही सुख से व्यतीत होता था। जब ऊपर कहे हुये अहमिन्द्र की आयु केवल छह माह की बाकी रह गई, तब से राजा सुदर्शन के घर पर देवों ने रत्न -वर्षा करनी शुरू कर दी। कुबेर ने एक नवीन हस्तिनापुर की रचना कर उसमें महाराज सुदर्शन तथा समस्त नागरिक प्रजा को ठहराया। इन्द्र की आज्ञा से देव कुमारियाँ आ कर रानी मित्रसेना की सेवा करने लगीं। इस सब शुभ निमित्तों को देख कर राजा प्रजा को बहुत ही आनन्द होता था।

फाल्गुन कृष्णा तृतीया के दिन रेवती नक्षत्र के उदय रहते हुये, पिछली रात्री में महादेवी मित्रसेना ने सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त अहमिन्द्र जयन्त विमान से च्युत होकर उसके गर्भ में आया। प्रातः होते ही रानी ने प्राणनाथ राजा सुदर्शन से स्वप्नों का फल पूंछा, तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में जगद्वृंद किसी महापुरूष ने प्रवेश किया है। नव माह बाद तुम्हारे अत्यंत प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा। इधर राजा रानी को स्वप्नों का फल सुना रहे थे, उधर जय -जय शब्द से आकाश को गुंजाते हुये देव लोग आ गये और भावी तीर्थंकर अरनाथ का गर्भ कल्याणक उत्सव मनाने लगे। उन्होने राजा सुदर्शन और रानी मित्रसेना का बहुत ही सन्मान किया और स्वर्ग से लाये हुये अनेक वस्त्राभूषण भेंट किये। गर्भाधान का उत्सव समाप्त देव लोग अपने अपने स्थान पर चले गये।

नौ माह बाद रानी मित्रसेना ने मगसिर शुक्ला चतुर्दशी के दिन पुष्प नक्षत्र में मति,श्रुत,अवधि से विभूषित तीर्थंकर पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के उत्पन्न होते ही सब ओर आनंद छा गया । भक्ति से ओत - प्रोत चारों

निकायों के देवों ने मेरू पर्वत पर ले जाकर उनका अभिषेक किया । वहां से लौटकर इन्द्र ने महाराज सुदर्शन के घर पर आनंद नामक नाटक प्रदशित किया तथा अनेक प्रकार के उत्सव किये। उस समय राज-भवन में जो भीड़ एकत्रित, उससे ऐसा मालूम होता था कि मानों तीनों लोकों के समस्त प्राणी वहां एकत्रित हो गये हों। तीर्थंकर पुत्र का नाम ''अरनाथ'' रखा गया। देव लोग ''जन्म कल्याणक'' का उत्सव समाप्त कर अपने - अपने स्थानों पर चले गये।

राज भवन में भगवान अरनाथ का बड़े प्यार से पालन होने लगा। वे अपनी बाल चेष्टाओं से माता पिता, बन्धु-बान्धव आदि को बहुत ही हर्षित करते थे। माता मित्रसेना की आशाओं के अनुरूप वे निरन्तर बढ़ने लगे। जब उन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया, तब उनकी शोभा अनुपम हो गई थी। उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर लोग उन्हें '' कामदेव'' कहने लगे थे।

श्री कुन्थुनाथ तीर्थंकर के बाद एक हजार वर्ष कम चौथाई पल्य बीत जाने पर भगवान अरनाथ हुये थे। उनकी आयु इसी अन्तराल में युक्त है। जिनराज अरनाथ की उत्कृष्ट आयु चौरासी हजार बर्ष की थी। तीस धनुष ऊँचा शरीर था । शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान पीत थी । उनके शरीर को रोग-शोक, दुःख आदि तो छू भी नहीं पाये थे। योग्य अवस्था देखकर महाराज सुदर्शन ने उनका कुलीन कन्याओं के साथ विवाह कर दिया और कुछ समय बाद उन्हें युवराज पद पर नियुक्त कर दिया। इस तरह कुमार काल के इक्कीस हजार बर्ष जाने पर उन्हें राज्य प्राप्त हुआ और इतने ही बर्ष बाद उनकी आयुशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ । भगवान अरनाथ चक्ररत्न को आगे कर विशाल सेना के साथ दिग्विजय के लिये निकले और कुछ बर्षो मे ही समस्त भरत क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित कर हस्तिनापुर वापिस लौट आये। दिग्विजयी सम्राट अरनाथ का नगर प्रवेशोत्सव धूम-धाम से मनाया गया था । उन्होंने चक्रवर्ती हो इक्कीस हजार वर्ष तक राज्य किया और इस तरह उनकी आयु तीन चौथाई अंश

गृहस्थ अवस्था में ही बीत गया । एक दिन शरद ऋतु के बादलों का नष्ट होना देख कर वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसी समय लौकान्तिक देवों ने आ कर स्तुति की और उनके विचारों का समर्थन किया, जिससे उनकी वैराग्य भावना बड़ी ही प्रबल हो उठी थी। लौकान्तिक देव अपना कार्य पूरा समझकर स्वर्ग को चले गये और उनके बदले समस्त देव-देवेन्द्र उनके राज्य में आये । उन सब ने मिलकर भगवान अरनाथ का दीक्षा अभिषेक किया तथा वैराग्य को बढ़ाने वाले अनेक उत्सव किये । भगवान अरनाथ अपने पुत्र अरविन्द कुमार को राज्य दे कर देव निर्मित ''वैजयन्ती'' नाम की पालकी पर सवार हो सहेतुक वन में पहुँचे । वहां उन्होंने दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर मगसिर शुक्ला दसमी के दिन रेवती नक्षत्र के समय जिन दीक्षा धारण कर ली। समस्त वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये और पंच मुष्टियों से समस्त केश उखाड़ डाले। उन्हें उसी समय मनःपयर्य ज्ञान प्राप्त हो गया। उनके साथ एक हजार अन्य राजाओं ने भी दीक्षा ली थी। देव लोग ''निःक्रमण-कल्याणक'' का उत्सव समाप्त कर अपने -अपने घर चले गये और भगवान अरनाथ मेरू पर्वत की तरह अचल हो आत्म ध्यान में लीन हो गये। पारणा के दिन वे चक्रपुर नगर में गये, वहां राजा अपराजित ने उन्हें शुद्ध प्रासुक आहार दिया। पात्र-दान से प्रभावित हो कर देवों ने राजा अपराजित के घर पर पंचाश्चर्य प्रकट किये। आहार लेने के बाद वे वन में लौट आये और वहां कठिल तपश्चर्या के द्वारा आत्म शुद्धि करने लगे।

उन्होनें कई जगह विहार कर छद्मस्थ अवस्था के सोलह वर्ष व्यतीत किये । इन दिनों वे मौनपूर्वक रहते थे। इसके अनन्तर वे उसी सहेतुक वन आ कर दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर माकन्द- आम्र पेड़ के नीचे बैठ गये। वहां पर उन्हें घातिया कर्मों का क्षय हो जाने से कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन रेवती नक्षत्र में संध्या के समय पूर्णज्ञान ''केवलज्ञान'' प्राप्त हो गया, जिससे वे समस्त जगत की चराचर वस्तुओं

को हस्तकमलावत् स्पष्ट जानने लगे। उसी समय देवों ने आकर ''ज्ञान कल्याणक-- का उत्सव किया। कुबेर ने दिव्यसभा ''समोशरण'' की रचना की, जिसके मध्य में सिंहासन पर अन्तरिक्ष विराजमान हो कर उन्होंने अपना सोलह वर्ष का मौन भंग किया- मधुर ध्वनि में सब को उपदेश देने लगे। उपदेश के समय समवशरण की बारहों सभायें पूर्णतः भरी हुई थी । उनके उपदेश से प्रतिबुद्ध अनेक क्षेत्रों में विहार किया और जैन धर्म का व्यापाक प्रचार किया। अनेक पथ भ्रान्त पुरूषों को उन्होने सच्चे पथ पर लगाया।

उनके समवशरण में कुम्भार्य आदि तीस गणधर थे, छह सौ दश श्रुतकेवली थे, पैंतीस हजार आठ सौ शिक्षक थे, अट्ठाईस सो अवधिज्ञानी थे, अट्ठाईस सौ केवलज्ञानी थे, और एक हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर अर्द्ध लक्ष (पचास हजार) मुनिराज थे। यक्षिला आदि साठ हजार आर्यिकायें थीं, एक लाख साठ हजार श्रावक थे, तीन लाख श्राविकायें थी, असंख्यात देव-देवियां और असंख्यात तिर्यंच थे।

जब उनकी आयु एक माह की अवशिष्ट रह गई, तब उन्होंने श्री सम्मेदशिखर पर पहुंचकर एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और वहीं से चैत्र कृष्णा अमावस्या के दिन रेवती नक्षत्र में रात्रि के पहले प्रहर में मोक्ष प्राप्त किया। देवों ने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की।

सन्दर्भ

१ रत्नकरण्डक श्रावकाचार-आचार्य समन्तभद्र,श्लोक ३८

२ त्रिलोकसार- आचार्य नेमिचन्द्र, गाथा ८२३

३ तिलोयपण्णति- आचार्य यतिबृषभ, पृष्ठ ४०५

४ तिलोयपण्णति- आचार्य यतिबृषभ, पृष्ठ ४०५

५ तिलोयपण्णति- आचार्य यतिबृषभ, पृष्ठ ४०५

६ आदि पुराण - आचार्य जिनसेन, सर्ग,२६/६१
७ हरिवंश पुराण, आचार्य जिनसेन, ११/२८
८ तिलोयपण्णति- आचार्य यतिबृषभ, पृष्ठ ४०५
६ आदिपुराण- आचार्य जिनसेन, सर्ग २७/१५, ३२/६५
१० तिलोयपण्णति- आचार्य यतिबृषभ, पृष्ठ ४०५
१० आदिपुराण - आचार्य जिनसेन, सर्ग ३२/२८-३०
११ हरिवंश पुराण - आचार्य जिनसेन, सर्ग ११/२३-२४
१२ आदिपुराण- आचार्य जिनसेन ३२/१५
१३ आदिपुराण- आचार्य जिनसेन ३२/१४१
११ हरिवंश पुराण, आचार्य जिनसेन, ११/४६-४७-४८
१२ त्रिलोकसार- आचार्य नेमिचन्द्र, पृष्ठ ६४३-६४४
१३ आदिपुराण - आचार्य जिनसेन, सर्ग ३२/६१-६३
१४ हरिवंश पुराण - आचार्य जिनसेन, सर्ग ११/३४/३५
१५ आदिपुराण - आ. जिनसेन, सर्ग २८/२ , २६/८
१६ तिलोयपण्णति- आचार्य यतिबृषभ, गाथा १३६६
१७ त्रिलोकसार - आ. नेमिचंद, गाथा ८३२
१८ सिद्धान्तसार दीपक- आचार्य सकलकीर्ति पृ.२३०
१६ हरिवंश पुराण आ. जिनसेन, सर्ग ११/१०८-११३
२० त्रिलोकसार आ. नेमिचंद्र, पृ.६४३
२१ तिलोयपण्णति- आ. यतिबृषभ, गाथा १३६७
२२ हरिवंश पुराण - जिनसेनाचार्य, सर्ग ११/११४-११५-११७
२३ तिलोयपण्णति- आचार्य यतिबृषभ, पृ.४०४
२४ हरिवंश पुराण - जिनसेनाचार्य, सर्ग ११/११६-१२२
२५ आदिपुराण- आ. जिनसेन, सर्ग २६/६
२६ आदिपुराण- आ. जिनसेन, सर्ग ३१/७६